अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की मासिक पत्रिका

वर्ष : 50 अंक : 10 आश्विन-कार्तिक वि.सं. 2080 अक्टूबर, 2023 सहयोग राशि- अठारह रुपये पृष्ठ-28 RNI 43602/77 ISSN No.2581-981x
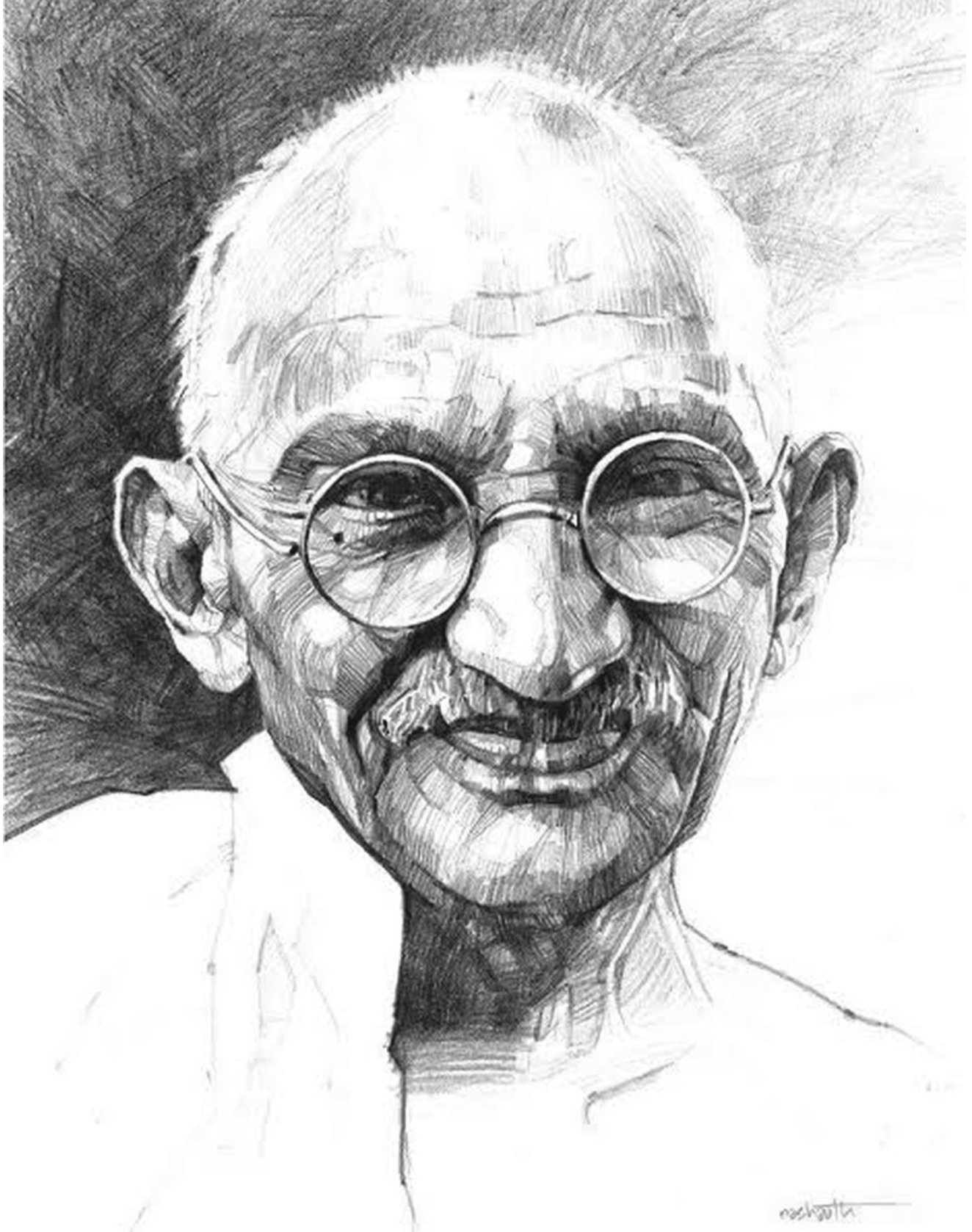
बेजोड़ गांधी संग्रहालय

जयपुर के सेंट्रल पार्क में गांधी संग्रहालय देखकर आ रहा हूँ। इसे गांधी वाटिका नाम दिया गया है। मैंने अब तक देश में जितने संग्रहालय देखे हैं, इसके जोड़ का संग्रहालय नहीं देखा। गांधीजी पर दिल्ली या साबरमती में भी ऐसा संग्रहालय नहीं है।

मुख्यमंत्री अशोक गहलोत की पहल पर इसकी कल्पना ने आकार लिया। बजट में घोषणा हुई। वास्तुकार अनु मृदुल ने जलगाँव, महाराष्ट्र में गांधी तीर्थ संग्रहालय बनाया था। उन्होंने ही अपने प्रदेश में इस गांधी वाटिका को रचा है। कलाकार या वास्तुकार के काम में एकसंगति सदा मुखर होती है। उसे यहाँ भी देखा जा सकता है।

जयपुर की विशाल गांधी वाटिका की विशेषता गांधी के जीवनचरित के गिर्द देश के इतिहास, स्वाधीनता के संघर्ष और नए (सांप्रदायिक) दौर में गांधी की प्रासंगिकता को रूपायित करना है। यह काम भव्य चित्रावली, मूर्तिशिल्प, दृश्य-श्रव्य रूपांकन, फ़िल्मांकन, इंस्टॉलेशन आदि के ज़रिए अंजाम दिया गया है। भव्यता के बावजूद गांधीमत की देशज सादगी वाटिका में हर तरह बोलती है।

यह समूचा काम कल्पना से यथार्थ के धरातल पर कुमार प्रशांत के जुनून से उतर पाया है। कोई डेढ़ साल से वे दिल्ली के गांधी शांति प्रतिष्ठान – जिसके वे अध्यक्ष हैं – के काम से समय निकालकर गांधी वाटिका को साकार करने में लगे थे। इतिहास और गांधी-दर्शन की इबारतों की भाषा से लेकर प्रदर्शन के विभिन्न कलारूपों के पीछे उनकी छाप को साफ़ पहचाना जा सकता है। अगर कोई चित्र या इंस्टॉलेशन बेडौल नहीं या किसी इबारत में बड़बोलापन नहीं तो इसके पीछे एक सुरुचिपूर्ण समन्वय भी ज़रूर रहा होगा।

मुझे इसमें जरा संदेह नहीं कि आने वाले वक़्त में जयपुर में प्रदेश के ही नहीं, देश-विदेश के आगंतुकों के लिए भी गांधी वाटिका प्रवास में एक अनिवार्य दर्शनीय स्थल बन जाएगा। नागरिकों – ख़ासकर विद्यार्थियों – के लिए यह ज्ञान का तीर्थ साबित होगा।

सेंट्रल पार्क अशोक गहलोत की ही देन है। उसके पार्श्व में गांधी वाटिका की स्थापना ने समूचे परिवेश शांति और अहिंसा के मूर्त संदेश से रूपायित कर दिया है।

❑ **ओम थानवी**
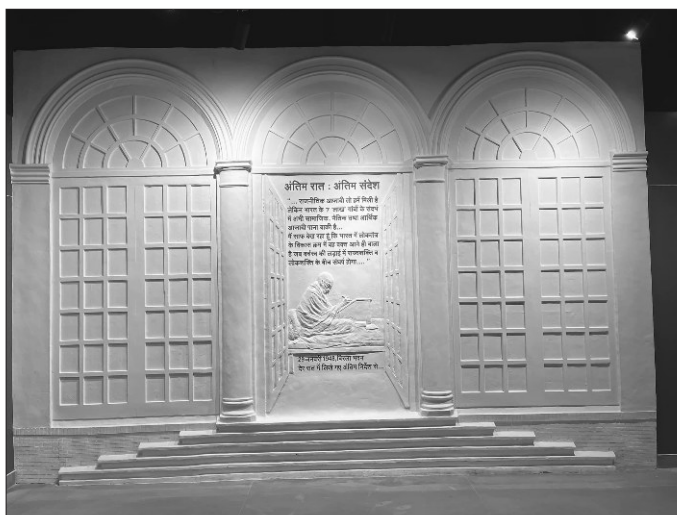
पुराणमित्यैव न साधु सर्वं
न चाऽपि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरत् भजन्ते
मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ।।

– मालविकाग्निमित्रम् (महाकवि कालिदास)

सभी काव्य केवल इसलिए अच्छे नहीं होते क्योंकि वे पुराने हैं। सभी काव्य इसलिए बुरे नहीं हैं क्योंकि वे नये हैं। बुद्धिमान लोग दोनों की परीक्षा करते हैं और निर्णय लेते हैं कि कोई काव्य अच्छा है या बुरा। केवल मूर्ख ही दूसरों की बातों को मान लेगा। ❑

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।। ऋग्वेद

अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की पत्रिका

वर्ष : 50 अंक : 10 आश्विन-कार्तिक वि.सं. 2080 अक्टूबर, 2023

क्र म

संरक्षक :
श्रीमती आशा बोथरा
संपादक :
राजेन्द्र बोड़ा
कार्यकारी संपादक :
प्रेम गुप्ता
प्रबंध संपादक :
दिलीप शर्मा

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7-ए, झालाना डूंगरी संस्थान क्षेत्र,
जयपुर-302004
फोन : 2700559, 2706709, 2707677
ई-मेल : raeajaipur@gmail.com

आवरण : गांधी जयन्ती

महात्मा गांधी को भूल जाना संभव नहीं !

प्रत्येक 2 अक्टूबर को उनका जन्मदिन मना कर हम बापू को याद करते है। दुनिया भर को सत्य और अहिंसा से भरे प्रेम का संदेश देने वाले और दुनिया भर से लोगों से प्रेम भरा आदर पाने वाले दो अक्टूबर 1869 को जन्मे इस महात्मा को देश विदेश के बड़े-बड़े लोगों ने अपने-अपने विशिष्ट भावों से श्रद्धांजलि दी है। वैज्ञानिक आइन्स्टाइन ने कहा था कि आने वाली पीढ़ियां यकीन नहीं करेंगी कि हाड़-मांस वाला ऐसा कोई व्यक्ति कभी इस धरती पर चलता फिरता था। जवाहरलाल नेहरू ने जिसके निधन पर कहा था हमारी ज़िंदगी से रोशनी चली गई है। इन बड़े व्यक्तियों के वचन फिर दोहराने की बजाय हमें इस बार एक कलाकार किशोर साहू की टिप्पणी यहां देना अधिक प्रिय लग रहा है।

फिल्मकार किशोर साहू, जिनके क्षत्रीय पुरखे दो सौ साल से भी अधिक पहले राजस्थान से उठ कर आज के छतीसगढ़ इलाके में जा बसे थे, अपनी पुस्तक 'मेरी आत्मकथा', जो इस कलाकार के निधन के बरसों बाद छत्तीसगढ़ की राज्य सरकार ने प्रकाशित की, में कहते हैं: मेरी राय में गौतम बुद्ध के बाद भारत में एक ही कर्मयोगी पैदा हुआ: जिसे न धन का लालच था, न पद की चाह थी, न तोप का डर; जो न फुसलाया जा सकता था, न खरीदा; जिसे सदा भगवान का ध्यान और उसके बन्दों से प्यार था। उस अभय, अलिप्त, महामानव, महाआत्मा का नाम था मोहनदास करमचंद गांधी, जिसे हम सादर, सस्नेह 'बापू' कहा करते थे। महात्मा गांधी का परिचय इससे बेहतर नहीं हो सकता। यही परिचय बापू को आज भी मानवता को प्रासंगिक बनाये हुए है।

कैसा संयोग रहा कि पिछली 14 सितंबर को राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति में 'दूसरा दशक' और 'संधान' के साथ हुए साझा कार्यक्रम में अनिल बोर्दिया स्मृति व्याख्यान देते हुए शिक्षाविद् आर. गोविंदा ने सबको समान शिक्षा के लक्ष्य को पाने का सपना पूरा करने के लिए महात्मा गांधी द्वारा दिए गए ताबीज़ की याद दिलाई। बापू ने राज में बैठे लोगों से कहा था मैं तुम्हें एक ताज़ीब देता हूं कि जब भी तुम्हें कोई फैसला लेने में कठिनाई आये तुम गरीबी की भीड़ में खड़े आखरी मनुष्य के चेहरे की कल्पना करना और

उसके भले के लिए जो हो वह करना। गोविंदा का व्याख्यान एक छोटे आलेख के रूप में अनौपचारिका के इस अंक में दिया जा रहा है।

राजस्थान सरकार ने गांधी की स्मृति को स्थाई रखने के लिए 87 करोड़ रुपये खर्च करके जयपुर में एक संग्रहालय बनाया है जिस पर भाई ओम थानवी की एक सुंदर और संक्षिप्त रपट भी इस अंक में मिलेगी। रपट के साथ के सभी चित्र तथा इस पृष्ठ पर नीचे का चित्र भी ओम थानवी के ही खींचे हुए हैं।

गांधी इतने जटिल नहीं थे कि उनके वचनों पर कोई भाषा टीका लिखी जाए। किन्तु अकादमिक जगत में गांधी को विभिन्न आयामों से देखने की हमेशा जिज्ञासा बनी रही है। इसीलिए प्रति वर्ष गांधी पर किताबें प्रकाशित होती ही रहती हैं। गांधी की जयंती पर हमने उन पर कोई अकादमिक आलेख की जगह खुद बापू के ही एक आलेख को देना उचित समझा जिससे कि उनकी बोली में ही उनके विचारों के सारतत्व को जाना जा सके। इस अंक में राजस्थान प्रौढ़ शिक्षा समिति की सदस्य शिक्षाविद् डॉ. शारदा जैन की हाल ही में ली गई एक भेंट वार्ता पर आधारित आलेख भी है जिसमें वे भारतीय बौद्धिक परंपरा की गहरी बात करती हैं। ❑

आचरण की शुद्धता ही वास्तविक सुंदरता

❑

❑
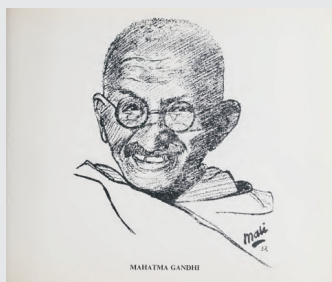
महात्मा गांधी

यह मानना कि उपदेश देने का बड़ा प्रभाव है, हमारा मिथ्या मोह है। हम अनंत काल से यही अनुभव करते आ रहे हैं कि उपदेश का प्रभाव बहुत ही कम होता है। आज सैकड़ों साधु उपदेश दे रहे हैं। सैकड़ों ब्राह्मण नित्य 'गीता' और भागवत आदि का पाठ कर रहे हैं। लेकिन कहा यही जा सकता है कि उसका कुछ भी असर नहीं होता। यह सच है कि उपदेश का कुछ असर होता हुआ हम देखते हैं लेकिन वह असर उसके उपदेशक का नहीं, बल्कि उसके चारित्र्य का होता है। यदि वह जितना आचरण कर सकता है, उससे अधिक का उपदेश देता है तो उसका कुछ भी असर नहीं होता। सत्य की ऐसी ही महिमा है। हम उसे भाषा के आवरण में कितना ही ठीक मालूम होती है। मुझसे भूल हो और लोगों को मालूम हो जाए तो उससे उनको हानि के बजाय लाभ ही होगा।

मनुष्य का सौन्दर्य उसके नैतिक आचरण में है। मनुष्य की सुन्दरता का आधार तो उसका हृदय है, उसकी धन संपत्ति नहीं। यहाँ आश्रम में मैंने हृदय के गुणों का विकास करने को ही धर्म माना है। हम खाते-पीते हैं। ईंट-चूने के मकान बनवाते हैं, लेकिन हम ऐसा विवश होकर करते हैं। हमने मिट्टी के मकान की अवमानना नहीं की है। मिट्टी के मकान में रहकर हम लज्जित नहीं होते। हम तो वैभव में डूबे हुए हों तो शरमाते हैं। हम अपने वैभव में वृद्धि करते हों तो हमें शर्म से सिर झुका लेना चाहिए। हाँ सेवा के लिए हमारे पास अवश्य धन हो सकता है। ऐसे धन का संग्रह हमें लाचारी से करनी पड़ती है। हम बाह्य प्रपंच का जितना प्रसार करते हैं आंतरिक विकास उतना ही कम होता है और इसलिए धर्म की हानि होती है।

प्रत्येक व्यक्ति को अपने आचरण के नियम स्वयं निश्चित करने चाहिए और फिर पूरी सख्ती के साथ उनके अनुसार ही अपना जीवन चलाना चाहिए। किसी के साथ अपनी तुलना करना बिल्कुल गलत है और इस तुलना के आधार पर अपने पापकर्म को उचित नहीं ठहराना चाहिए। उस मनुष्य का सुन्दर वचन जो स्वयं तदनुसार आचरण नहीं करता वैसे ही निरर्थक हैं जैसे कि सुन्दर रंग वाला निर्गन्ध फूल। हमें अपना आचरण केवल अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप ही नहीं, बल्कि यह देखते हुए भी निर्धारित करना

चाहिए कि इसका दूसरों पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

जितनी गहराई में जाए, जितनी शांति रखें, उतना ही अहिंसा और सत्य का अर्थ स्पष्ट होता जाता है और उनकी परम उपयोगिता दिखाई देती जाती है। मुझे लगता है कि हम उनका जितना आचरण करते हैं, ईश्वर से उतना ही साक्षात्कार होता जाता है। इसके बाहर ईश्वर साक्षात्कार की बात काल्पनिक है, मेरा ऐसा विश्वास बुरे विचारों और वृतियों के खिलाफ शेर की तरह जूझना हमारा धर्म है। जीत होना ईश्वर के हाथ में है। हमारा संतोष जूझने में ही है। हमारा जूझना सच्चा होना चाहिए। हजारो मन तर्क की अपेक्षा तोलाभर आचरण की कीमत अधिक है। बुरे विचार हमेशा आने का ही नाम है– अपने आप बनाया हुआ नरक। बुरे विचार मनुष्य को आते है, मगर जैसे घर में कूड़ा करकट भर जाने पर जो व्यक्ति उसे समय पर निकालता रहता है, और अपना घर साफ रखता है, उसी तरह कुविचार के आते ही उन्हें निकालता रहे तो उसकी सदा जय ही है वह कभी दंभी नहीं कहलाता। इस दंभ से बचने का मेरा स्वर्ण उपाय यह है कि हमें इन विचारों को कभी नहीं छिपाना चाहिए। जो व्यक्ति सत्य का पालन करना चाहता है, उसके मन में एक भी ऐसा विचार नहीं आना चाहिए जिसे गुप्त रखना पड़े। उसके बेहूदे विचार को भी संसार जान जाए तो उसे चिन्ता नहीं करनी चाहिए। चिन्ता तो कलुष विचारों की होनी चाहिए; पाप की होनी चाहिए।

संसार कब सुधरेगा ? मेरा अनुभव तो यह कहता है कि समस्त संसार ठीक संभव भी है तो वह

व्यक्तिगत उदाहरण प्रस्तुत करके ही किया जा सकता हैं। जो तुझे सत्य लगे उसे निधड़क होकर करते चले जाओ भले ही उसमें भूल भी हो। यदि तुममें भूल दिखे तो उसे सुधार लो और यदि नहीं दिखे तो भले ही तुझे मरना पड़े, तूँ कंगाल हो जाए, तब भी तुझे अपने मार्ग से विचलित नहीं होना चाहिए। ऐसा करते हुए किसी पर दोष न करना, असत्याचरण न करना, अशांत न होना, धीरज न खोना और जो संकट आए तो सहन करना। अपूर्ण पिता के संरक्षण में शांति की खोज करने की अपेक्षा पिता के पिता अथार्त पूर्ण परमेश्वर के संरक्षण में शांति की खोज करो।

जीवन एक उच्चाकांक्षा है। उसका ध्येय पूर्णता अथार्त् आत्म साक्षात्कार के लिए प्रयत्न करना है। मुझमें निर्बलता और अपूर्णता दोनों ही है। मुझे उनका दुखद भान है। मेरे लिए तो सदाचार, नैतिक-नियम और धर्म एक ही बात है। आदमी अगर पूरी तरह से सदाचारी हो परन्तु धार्मिक न हो तो उसका जीवन बालू पर खड़ी की गई इमारत की तरह समझिए। इसी तरह सदाचार हीन धर्म भी दूसरों को दिखाने के लिए होता है और आपस में सिर फुटौवल का कारण बनाता है। सदाचार में सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्य तीनों आते हैं। मनुष्य जाति ने आज तक के जितने नियमों का पालन किया है, वे सब इन तीन सर्वप्रधान गुणों से संबंधित

हैं या उन्हीं से प्राप्त हुए थे और दूसरी ओर अहिंसा तथा ब्रह्मचर्य की उत्पत्ति सत्य से होती है और सत्य मेरे लिए प्रत्यक्ष ईश्वर ही है।

हमेशा लक्ष्य यही रखो कि मन, वचन और कर्म का मेल साधना है। सदा विचार शुद्ध रखने का ध्यान रखो, फिर सब ठीक हो जाएगा विचार में जितनी सार्मथ्य है उतनी किसी और वस्तु में नहीं। शब्द से कर्म होता है और विचार से शब्द। दुनिया एक महान विचार का ही फल है, जहाँ विचार शुद्ध और महान होता है, वहाँ फल भी सदा महान और शुद्ध होता है।

जीवन में नित्य जो घटनाएँ होती हैं, उनमें असत्य और बेइमानी की ही विजय होती है, ऐसा मेरा अनुभव नहीं है। हमें ऐसे दृष्टांत सहज ही मिल सकते हैं जहाँ इनकी विजय हुई हो, लेकिन गहराई में जाने पर हम देखेंगे कि सच्ची विजय तो सत्य की ही होती है। यदि सत्य की विजय हमेशा स्वयं सिद्ध ही हो तो फिर उसकी क्या कीमत रह जाएगी? और सत्य का पालन करने का क्या लाभ होगा? इसी से वेद के समकक्ष माने जाने वाले ईशोपनिषद में यह मंत्र आता है कि सत्य का मुँह हिरण्यमय पात्र से ढंका हुआ है। उसके तेज से हमारी आँखें चकाचौंध हो रही है।

यदि अपने आदर्श के अधिकाधिक समीप पहुँचने का अनवरत प्रयत्न करना है तो मुझे चाहिए कि संसार को अपनी निर्बलताएँ और निष्फलताएँ भी देखने दूँ। ताकि मैं दंभ से बच जाऊँ और शर्म के मारे भी इस आदर्श को प्राप्त करने की यथा शक्ति साधना करूँ। यदि मनुष्य मात्र इतना करे कि उसे जो मार्ग दिखाई दे उसका ईमानदारी से अनुसरण करे तो क्रमशः सत्य तक अवश्य पहुँच जाएगा।

अगर हम सच्चा जीवन व्यतीत करना चाहते हैं, तो मानसिक आलस्य छोड़कर हमें मौलिक विचार करना होगा। परिणाम यह होगा कि हमारा जीवन बहुत सरल हो जाएगा। आदमी में अपने को धोखा देने की शक्ति, दूसरों को धोखा देने की शक्ति से बहुत अधिक है, इस बात का प्रमाण प्रत्येक समझदार आदमी है।

जो मनुष्य अपने आप बँध जाता है वहीं बंधन मुक्त हो जाता है। बिना पतवार का जहाज स्वतंत्र नहीं है, इधर-उधर टकराता है और आखिर किसी कगार से टकराकर टूट जाता है। वह समुद्र की लहरों की दया पर चलता है। उसी तरह जो मनुष्य पहले से ही अपनी मर्यादा निश्चिय कर लेता है वह जीवन रूपी तुफानी समुद्र से जूझता है और शांत रह सकता है। दूसरों की नजर में हम कैसे लगते है, इस बात का विचार करना छोड़कर यदि हम यह समझने लगें कि हमारे लिए क्या हितकर है तो हम संसार के अनेक झंझटों से बच जाएँगे। दूसरों को रिझाने के लिए या उनकी नजरों में अच्छे जँचने की खातिर हम जाने और अनजाने में कितनी ही कृत्रिम उपाय करते रहते हैं और परिणाम स्वरूप दुखी होते हैं। जो व्यक्ति एक उत्तम कार्य प्रारम्भ करना चाहता है उसे किसी के आशीर्वाद की इच्छा कभी नहीं करनी चाहिए। देश के बड़े से बड़े आदमी के आशीर्वाद की भी नहीं। एक उत्तम कार्य में अपना आशीर्वाद खुद निहित रहता है। ❑
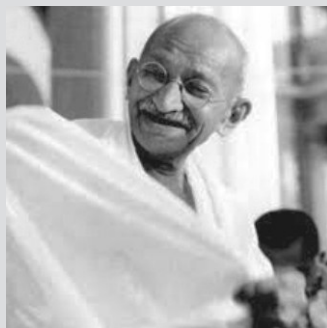
मैं सोचता हूं कि वर्तमान जीवन से 'संत' शब्द निकाल दिया जाना चाहिए। यह इतना पवित्र शब्द है कि इसे यूं ही किसी के साथ जोड़ देना उचित नहीं है। मेरे जैसे आदमी के साथ तो और भी नहीं, जो बस एक साधारण-सा सत्यशोधक होने का दावा करता है, जिसे अपनी सीमाओं और अपनी त्रुटियों का अहसास है और जब-जब उससे त्रुटियां हो जाती है, तब-तब बिना हिचक उन्हें स्वीकार कर लेता है और जो निस्संकोच इस बात को मानता है कि वह किसी वैज्ञानिक की भांति, जीवन की कुछ 'शाश्वत सच्चाइयों' के बारे में प्रयोग कर रहा है, किंतु वैज्ञानिक होने का दावा भी वह नहीं कर सकता, क्योंकि अपनी पद्धतियों की वैज्ञानिक यथार्थता का उसके पास कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है और न ही वह अपने प्रयोगों के ऐसे प्रत्यक्ष परिणाम दिखा सकता है जैसे कि आधुनिक विज्ञान को चाहिए।

❑ **महात्मा गांधी (यंग इंडिया, 12.05.1920)**

❑

प्रोफेसर आर. गोविन्दा

शिक्षाविद् अनिल बोर्दिया की स्मृति में होने वाली वार्षिक व्याख्यान माला का नौवां व्याख्यान राष्ट्रीय शैक्षिक योजना विश्वविद्यालय, नई दिल्ली के कुलपति रह चुके आर. गोविंदा ने दिया। राजस्थान सरकार की लोकजुंबिश परियोजना, जिसने राजस्थान में साक्षरता के प्रतिशत को जबरदस्त उछाल दिया, को बनाने वाले और उसे सफलता से लागू करने वाले अनिल बोर्दिया ने वहां अपना कार्यकाल पूरा हो जाने पर गैरसरकारी संगठन 'दूसरा दशक' बना कर इतिहास रचा। 'दूसरा दशक' ने 'संधान' और राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति के साथ मिल कर इस व्याख्यान का आयोजन किया था। गोविंदा ने अपने बेलाग व्याख्यान में उन सच्चाईयों को रेखांकित किया जिनके कारण भारत में सबको शिक्षा का सपना हकीकत में तब्दील नहीं हो पा रहा है। इस महत्वपूर्ण व्याख्यान को हम यहां तनिक सम्पादन के साथ अविकल प्रस्तुत कर रहे हैं। ❑ सं.
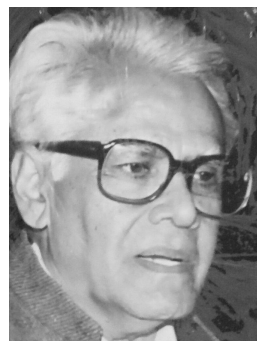
अनिल बोर्दिया स्मृति

शिक्षा की व्यवस्था बदलने के लिए गांधी के ताबीज़ को याद करें

❑

सबको शिक्षा के लिए यह संघर्ष आज का नहीं है। यह संघर्ष सौ साल से भी पुराना है। हमें इसकी पृष्ठभूमि जानने के लिए पीछे 1910-1911 में जाना पड़ेगा जब गोपालकृष्ण गोखले ने ऐसे भारत की कल्पना की थी जहां सभी बच्चे पढ़ने लिखने में सक्षम हों। गोखले उन दिनों की इंपीरियल असेंबली में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा शुरू करने की वकालत कर रहे थे। उन्होंने परिकल्पना की कि अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के माध्यम से दो दशकों के भीतर सबको शिक्षा का लक्ष्य हासिल करना संभव है। लेकिन उपनिवेशवादी शासकों ने उसे अव्यावहारिक और अनावश्यक मान कर खारिज कर दिया। प्राथमिक शिक्षा निःशुल्क भी नहीं बनी और अनिवार्य भी नहीं बनी। बीस वर्ष की समय सीमा बीत गई। लेकिन सभी के लिए शिक्षा का गोखले का सपना साकार नहीं हुआ। फिर 40 साल के बाद 1950 में जब हमने भारत गणराज्य का संविधान अपनाया तब उसमें हमने कल्पना की कि सभी बच्चे न केवल पढ़ने और लिखने का बुनियादी कौशल हासिल करेंगे बल्कि आठ साल की स्कूली शिक्षा भी पूरी करेंगे। सभी बच्चों के लिए मुफ़्त और अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान संविधान में राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत के रूप में अपनाया गया। तब देश में साक्षरता लगभग 18 प्रतिशत थी। और करीब 40 प्रतिशत बच्चों का स्कूलों में नामांकन था। संविधान के नीति निर्देश में दस साल की सीमा निर्धारित की गई। गोखले की 20 साल की सीमा को आधा कर दिया गया। मगर संविधान के निर्देश की 10 साल की समय सीमा भी पूरी हो गई और हम वह लक्ष्य मीलों से चूक गए। फिर 60 साल के बाद 2010 में सामाजिक न्याय के सिद्धांत के अनुरूप

बच्चों की शिक्षा केवल नीति तक सीमित नहीं रही बल्कि उसे मौलिक घोषित कर दिया गया।

प्रत्येक बच्चे के लिए शिक्षा के बुनियादी अधिकार के लिए कानून भी बनाया गया जिसमें सबको प्राथमिक शिक्षा की पांच साल की समय सीमा रखी गई। वह समय सीमा भी कईं वर्ष पहले बीत चुकी है। हम लक्ष्य तक नहीं पहुंचे हैं। लाखों बच्चे अब भी स्कूल से बाहर हैं। देश में केवल कुछ ही स्कूल बुनियादी मानदंडों को पूरा कर रहे हैं। जैसा कि अभी अभी निकली राष्ट्रीय शिक्षा नीति बताती है कि हम लर्निंग क्राइसिस में फंसे दिख रहे हैं।

यदि हम अपनी कठिन और लंबी यात्रा पर विचार करें तो पाते हैं कि तब और अब के बीच बदलते संदर्भों के अनुसार परिभाषाएं बदल गई, लेकिन उनके अंतर्निहित लक्ष्य वही है – सबके लिए शिक्षा। हर बार हमने वही सपना देखा जो गोखले ने देखा था कि भारत को निरक्षरता से मुक्त किया जाएगा और प्रत्येक नागरिक को कम से कम बुनियादी साक्षरता और शिक्षा के कौशल से लैस किया जाएगा। हर बार हमने लक्ष्य को काफी करीब आते पाया। लेकिन जन–जब हम उस समय बिन्दु पर पहुंचे तो पाया कि लक्ष्य मायावी हो गया। मृगमरीचिका की तरह दूर चला गया। क्या हम किसी अप्राप्य लक्ष्य का पीछा कर रहे हैं? क्या जनशिक्षा एक मृगतृष्णा है? क्या हमें स्थिति से समझौता कर लेना चाहिए कि भारत में गरीबों का एक बड़ा वर्ग स्कूली शिक्षा के दायरे से बाहर रहेगा और कार्यात्मक रूप से निरक्षर बना रहेगा?

सबको शिक्षा देने के लक्ष्य को पाने के लिए किये जाने वाले परिवर्तनकारी संघर्ष और यात्रा की कईं चुनौतियों हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि अपर्याप्त वित्तपोषण या कार्यान्वयन में अक्षमता भी है। लेकिन संरचनात्मक सुधारों के माध्यम से मुद्दों को हल करने की हमारी अनिच्छा अधिक बुनियादी समस्या है। हमने बहुत कुछ किया है मगर असल में जो संरचनात्मक सुधार हमें करने चाहिए थे वे करना भूल गए। शिक्षा के क्षेत्र में संरचनात्मक सुधार की यह अनिच्छा 75 सालों से बनी हुई है। अनिच्छा के साथ हम निरुत्साहित भी हैं।

मेरे विचार में तीन–चार प्रमुख चुनौतियां हैं हमारे सामने जो हमें आगे नहीं बढ़ने देती। पहली चुनौती है कमजोर नाजुक सीढ़ी की चुनौती। हम जीवन में व्यक्तिगत प्रगति के साथ ताकत के रूप में शिक्षा का सीढ़ी के रूप में उपयोग करते हैं। यह सीढ़ी इतनी मजबूत होनी चाहिए कि ऊपर चढ़ने की कोशिश कर रहे लोगों का बोझ सहन कर सके। वास्तव में भारत में शिक्षा प्रणाली की यह गंभीर समस्या है। हमारी स्कूल प्रणाली वास्तव में बढ़ते बोझ को उठाने में असमर्थ है क्योंकि स्कूल में न्यूनतम भौतिक बुनियादी ढांचे और शैक्षणिक संसाधनों के संदर्भ में क्या होना चाहिए यह अपरिभाषित ही रहा। 'ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड' में कुछ कोशिश की गई लेकिन वह आगे नहीं चला। आखिर में यह काम शिक्षा के अधिकार कानून ने किया। इसमें प्रत्येक स्कूल में आवश्यक आवश्यकताओं को परिभाषित किया। भारत में आज विद्यार्थियों की संख्या 15 लाख है जिसका केवल छोटा सा प्रतिशत ही उस कानून में निर्दिष्ट प्रावधानों के अनुरूप सुविधाएं पा रहा है। यह पूछना स्वाभाविक ही है कि यह कानून, जो मौलिक अधिकार है उसके बाद भी यह स्थिति कैसे जारी है? कैसे हम पूरी जानकारी के साथ एक आधिकारिक नीति और सामूहिक प्रतिबद्धता का उल्लंघन होते देख रहे हैं। यह निष्कर्ष निकालना गलत नहीं होगा कि सरकार और न्यायपालिका इस खुले उल्लंघन के लिए समान रूप से दोषी हैं।

हर एक स्कूल का डेटा है। हमें यह भी पता है कि स्कूल को सुधारना है। हम कार्यवाही कर सकते हैं। फिर क्या अड़चन आ रही है? यह गरीबों के प्रति हमारी उदासीनता का परिचायक है। स्कूलों में सुधार करने की बजाय हम

इनपुट बनाम परिणाम की आराम कुर्सी पर बैठे हैं। हम इसमें जरूर सुधार ला सकते हैं। लेकिन सुधार लाने के लिए हमारा लक्ष्य कम से कम हर स्कूल को केन्द्रीय विद्यालय, जैसी सुविधाएं दिलाना होना चाहिए। इसमें समय लग सकता है लेकिन वह असंभव नहीं है। इच्छा होनी चाहिए।

अनुपस्थित शासन प्रशासन दूसरी चुनौती है। भारतीय नीतियां अच्छी हैं क्रियान्वयन कमजोर है। सरकारी कार्यक्रमों की विफलता के लिए दिया जाने वाला एक सामान्य बहाना है। एक सामान्य सरकारी स्कूल राज्य नियंत्रण और उपेक्षा का एक अजीब संयोजन के तहत कार्य करता है। स्कूल में होने वाली लगभग हर चीज शिक्षा अधिनियम या शिक्षा संहिताओं तथा राज्य सरकारों द्वारा बनाये गए नियमों और विनियमों से चलती है,मगर नियमों की पालना के लिए बारीकी से निगरानी नहीं की जाती है। अधिकांश प्राथमिक विद्यालयों का न तो मार्गदर्शन होता है और न परिवीक्षण होता हैं। इसे मैं अधीनस्थ शासन की उदासीनता कहूंगा जिसका सीधा परिणाम एक निष्क्रिय स्कूल हैं, जो बिना पतवार के जहाज की तरह संचालित होते हैं। ऐसी स्थिति में किसी को आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि अगर कुछ बच्चे पढ़ाई बीच में छोड़ देते हैं और स्कूल जाने वाले अधिकांश बच्चे प्रारम्भिक चक्र में भाग लेने के बाद भी मुश्किल से पढ़ना और गणना सीख पाते हैं।

यह पहचानना आवश्यक है कि प्राथमिक विद्यालय अनिवार्य रूप से एक स्थानीय सामाजिक संस्था होते हैं जिसमें माता-पिता, शिक्षक और स्थानीय प्रशासन शामिल होते हैं। वहां स्वामित्व और जवाबदेही का मजबूत तंत्र स्थापित करना होता है। समुदाय केंद्रित स्थानीय प्रणाली का आयोजन जरूरी होता है।

तीसरी चुनौती है लर्निंग क्राइसिस की। मैं कहूंगा स्कूलिंग विदाउट लर्निंग। स्कूल जायें लेकिन सीखें नहीं। सभी सर्वे रिपोर्टें यही कहती हैं कि बच्चों ने स्कूलों में आठ साल पूरे कर लिये परंतु वे दूसरी के स्तर का भी पढ़-लिख नहीं पाते। यह समस्या पिछले कुछ वर्षों में घनी हो कर संकट का स्वरूप ले चुकी है। सीखने के स्तर का समाधान पूर्ण रूप से यह सुनिश्चित करने में निहित है कि स्कूलों में शिक्षण नियमित रूप से हो, बच्चे प्रतिदिन सीखने के लिए पर्याप्त समय के लिए आयें, और शिक्षक शिक्षण संबंधी गतिविधियों के लिए स्कूल में पर्याप्त समय दें। यह सभी चीजें शिक्षा के अधिकार कानून में निर्दिष्ट की हुई हैं। कितने दिन चलना चाहिए साल में हर एक स्कूल और कितने घंटे स्कूल चलना चाहिए। कितने घंटे का शिक्षण होना चाहिए तथा कितने घंटे शिक्षक रहना चाहिए स्कूल में यह सभी निर्दिष्ट हुआ। लेकिन इन पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता।

स्कूलों में शिक्षण मजबूत करने के लिए सबसे बुनियादी आवश्यकता है पेशेवर शिक्षकों का एक समुदाय। लेकिन आज भारत में यह नहीं है। क्यों हुआ? स्वतंत्रता के बाद तीन-चार दशक तक तो बहुत कोशिश की। लेकिनदुर्भाग्य से पिछले बीस साल में अपनाई गई नीतियों ने वस्तुतः शिक्षक समुदाय को विखंडित कर दिया है। उन नीतियों ने शिक्षक की व्यावसायिक पहचान को ही पूरी तरह नष्ट कर दिया है। आज प्राथमिक शिक्षा का शिक्षक कौन है यह बताना मुश्किल हो गया है। उसकी क्या योग्यता होनी चाहिए, यह कहना मुश्किल हो गया है। दुर्भाग्य से हमारे देश में शिक्षक प्रशिक्षण का काम पूरी तरह व्यावसायिक संस्थानों के हाथों में छोड़ दिया गया है।

चौथी और आखरी चुनौती है शैक्षणिक क्षेत्र में बढ़ती असमानता की। स्कूल की कल्पना एक ऐसे सार्वजनिक स्थान के रूप में की जाती है जो आस पड़ोस के सभी बच्चों को एक साथ लाता है। शैक्षिक दार्शनिकों ने स्कूल को स्थानीय संस्कृति व परंपराओं, व्यावसायिक संबद्धताओं आदि का प्रतिनिधित्व करने वाला सूक्ष्म जगत बताया है। यह परिभाषा भारत में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि स्कूल प्रणाली जाति, वर्ग, धर्म, भाषा क्षेत्र और लिंग के विभाजन के विविध सामाजिक परिवेश में कार्य करती है। उस प्रणाली से अपेक्षा की जाती है कि वह सीखने के लिए वैसी स्थिति उपलब्ध कराए जो ऐसे विभाजनों के हानिकारक प्रभावों से विद्यार्थियों को सुरक्षित करे।

स्कूली शिक्षा में बढ़ती असमानता समाज के विभिन्न वर्गों के जीवन को अलग-अलग जीने के लिए प्रेरित करती है। जितनी भेदभाव पूर्ण शिक्षा प्रणाली हमारे देश में है वैसी किसी भी देश में नहीं है।

संक्षिप्त में कहा जा सकता है कि हम अब भी मैकालेवादी ही बने हुए हैं। मैकाले का मुख्य सिद्धांत स्कूलों और जन-समूहों के बीच विभाजन

करना था। मेरा मानना है कि हमने अपनी स्कूल प्रणाली में उस विभाजन को समाप्त करने की बजाय उसे अपनाना शुरू कर दिया है। भारतीय अभिजात्य वर्ग और बुद्धिजीवियों ने मैकाले की शिक्षा वुअवस्था के प्रस्ताव का कडा विरोध किया था, लेकिन विडंबना यह है कि तुरंत उसके बाद मैकाले प्रणाली की अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में नामांकन तेजी से बढ़ने लगा। अभिजात्य वर्ग और बुद्धिजीवियों का नामांकन तेजी से बढ़ा। स्थानीय भाषाओं के प्राथमिक स्कूल जिन्हें गरीबों की शिक्षा पूरी करनी थी वे उपेक्षित रहे।

यशपाल कमेटी बताती है कि यह जो हमें दिख रहा है वह सिर्फ बाहरी अभिव्यक्तियां हैं। शिक्षा व्यवस्था की अंतर्निहित अस्वस्थता के बारे में हम नहीं सोचते। अंदर की बीमारी को नहीं उसके बाहरी लक्षण ही देखते हैं। यह वास्तव में एक सामाजिक कुरीति है। हमारी स्कूली व्यवस्था सामाजिक दरार पैदा करती है। इसके परिणामस्वरूप स्कूल व्यवस्था को 75 साल में कभी एकीकृत नहीं देखा जा सका। मैकाले के नक्शे कदम पर चलते हुए हमने अपनी स्कूली शिक्षा पर एक विभाजित दृष्टिकोण अपनाया और उसको पोषित किया है। अब इस विकृति को समाजशास्त्रीय भाषा में कह सकते हैं

भारत में संभ्रांत लोगों के बच्चों के लिए शिक्षा लगभग एक मानक हो गई है। इनमें से अधिकांश स्कूल केन्द्रीय विद्यालयों के बराबर हैं। पूरे देश में ऐसे 25,000 स्कूल हैं। राज्य बोर्डों के भी कुछ स्कूल इनमें जुड़ सकते हैं। फिर भी उनकी कुल संख्या एक लाख से ज्यादा नहीं होगी। दूसरी ओर 14 लाख छोटे स्कूल ऐसे हैं जिनमें से बच्चे अधिकांश प्राथमिक स्तर से आगे नहीं बढ़ते हैं। छोटे स्कूल संसाधनों में बड़े स्कूलों से बिल्कुल विपरीत हैं। इन खंडित स्कूलों से बच्चे कभी भी आगे नहीं बढ़ते हैं। यह विभाजित परिपेक्ष्य केवल भवन के बारे में या संसाधन के बारे में नहीं है। यह विभाजित परिपेक्ष्य स्कूल निर्माण से लेकर पाठ्यक्रम निर्माण और मूल्यांकन तक शिक्षा के हर पहलू में व्याप्त है।

इस समाजशास्त्रीय दरार ने हमारी दृष्टि को धूमिल कर दिया है। प्रशासन एक मूक दर्शक की तरह बैठा रहता है। हमें स्वीकार करना होगा कि सात दशकों से अधिक समय से अनिवार्य स्कूली शिक्षा की वकालत करते हुए हमने अनिवार्यता के पीछे के उद्देश्य को परिभाषित और परिपालन न करके देश के आम अभिभावकों के साथ न केवल नैतिक रूप से दुर्भाव किया है बल्कि झूठा तर्क देकर उन पर बौद्धिक रूप से कुठाराघात भी किया है।

स्वतंत्र भारत ने नीति की शब्दावली में तो बदलाव शुरू कर दिया लेकिन व्यवहार, अवधारणा और परिपेक्ष्य अपरिवर्तित रहा। उपनिवेशवादी चले गए। उपनिवेश - वादियों ने हमें छोड़ दिया, मगर उपनिवेशवाद ने हमें नहीं छोड़ा। उपनिवेशवाद की मानसिकता नहीं गयी। मैकाले नहीं रहा, लेकिन मैकालेवाद जीवित और फलत-फूलता रहा है।

सभी के लिए शिक्षा एक ऐसा लक्ष्य है जिसे वर्ग जन भेद के बिना सामान्य स्कूल प्रणाली के निर्माण की प्रतीक्षा में छोड़ा या टाला नहीं जा सकता। हमें यह कोशिश तो जारी रखनी पड़ेगी। प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने के लिए सौ साल से भी अधिक समय पहले शुरू हुआ संघर्ष जारी रखना होगा। लंबी यात्राओं में असफलताओं का सामना करने के बावजूद यह आशावाद बनाए रखना है कि सभी के लिए शिक्षा के लक्ष्य तक पहुंचा जा सकता है।

आशावाद का स्रोत हमें सामान्य लोगों के बदलते परिपेक्ष्य में दिखता है। तीस चालीस साल पहले जो महसूस किया जाता था उसके विपरीत समाज के हर वर्ग का सबसे गरीब व्यक्ति भी व्यक्तिगत प्रगति के लिए स्कूली शिक्षा को एक आवश्यक शर्त मानता है। वर्ग जन विभाजन के बावजूद और यहां तक कि सीमित आर्थिक संसाधनों और कोई सामाजिक पूंजी न होने के बावजूद भारत के लोगों ने अपने बच्चों के भविष्य के निर्माण के लिए स्कूली शिक्षा को अपनाया है।

हमारा काम केवल अधिक स्कूल बनाना या अधिक बच्चों का नामांकन करना नहीं हैं बल्कि भविष्य के सामान्य स्कूलों की कल्पना करके स्कूली शिक्षा के उद्देश्य की एक साझा दृष्टि तैयार करना है जहां बच्चों को एक सामंजस्यपूर्ण तथा अन्योनाश्रित सदस्य के रूप में खुद की कल्पना करने के लिए तैयार किया जा सके। हमें खुद को गांधीजी के ताबीज़ की याद दिलाने की भी जरूरत है जिससे कि हम अपना ध्यान ऊपरी 10 प्रतिशत से हटा कर संसाधनों को सामाजिक आर्थिक पिरामिड के निचले 40 प्रतिशत हिस्से पर केंद्रित करना होगा। मुझे लगता है यह संभव है। ❑

कविता देवै दीठ
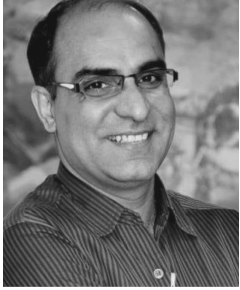
डॉ.राजेश कुमार व्यास को उनकी राजस्थानी काव्य–कृति 'कविता देवै दीठ' के लिए केंद्रीय साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला है। उनके इस संग्रह की कुछ कविताओं के जाने माने लेखक सवाई सिंह शेखावत द्वारा किये गये हिंदी अनुवाद। ❑सं.

कविता दृष्टि देती है

काल सुनाता है अनहद नाद
कवि तू भी गामन के गीत
भले अलग-अलग सबका आकाश
पर धरती सबकी एक
अपनी मनुष्यता मत गंवा तू
कविता देती यह दृष्टि!❑

सुंदर सपने

हृदय के मौन में इकट्ठे किये मैंने
बेकलों के सपने
पाली मछलियाँ मरुस्थल की मृगतृष्णा में
अब तू पानी बन
जीवन दे मछलियों को
और सत्य सिद्ध कर रेत का हेत!❑

मिले तू कदाचित

नदी नहाऊँ तीरथ जाऊँ
पढ़ूँ वेद-पुराण पूजूँ पाथर
गाऊं तेरे गीत
बड़ी कठिन यह जीवन-यात्रा
करूँ यही अरदास मिले तू कदाचित! ❑

गाने लगा है सन्नाटा

लुप्त हुए सभी शब्द
विगत को देखते
हाँफते-काँपते धुँधले पड़ गए
सभी अक्षर
पर गाने लगा है सन्नाटा
अब सूनेपन के गीत! ❑
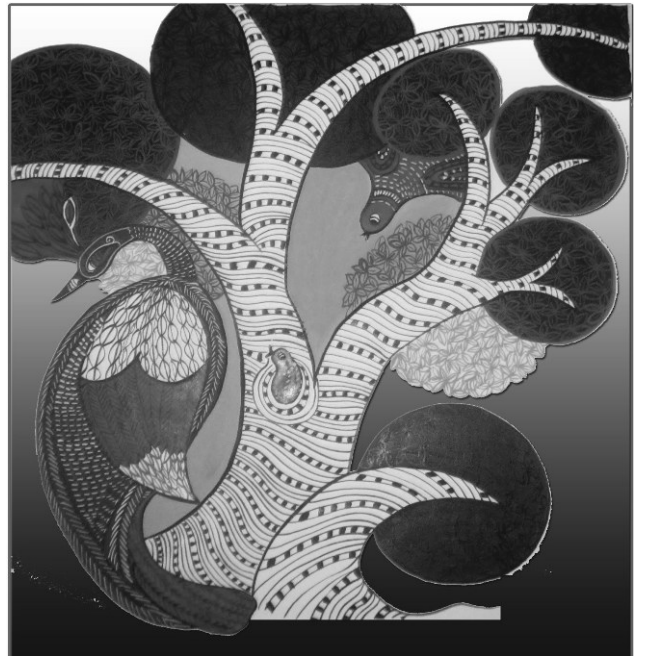
सुर में निरखूँ

(उस्ताद अमीर खां को सुनते हुए)

लयकारी में तान
और मध्यम की मिठास
कंठ अवेर रहे शब्द
शब्दों में भीतरी उजास
मुख से बोलते
राग के आरोह-अवरोह में
उतर गए एक-एक कर
सभी पुराने वस्त्र
सुर में निरखूँ
मैं निखिल संसार!
वक़्त की उदासी
झक्क पीला रंग
सफ़ेद हो जाता है
जब गवाक्ष से
हवेली के आँगन मेंउतरती है धूप।
कबूतर इकट्ठे होकर

गुटरगूँ करते उत्सव मनाते हैं
ऐसे में सूनी हवेली से
नदारद हो जाती है
वक़्त की उदासी! ❑
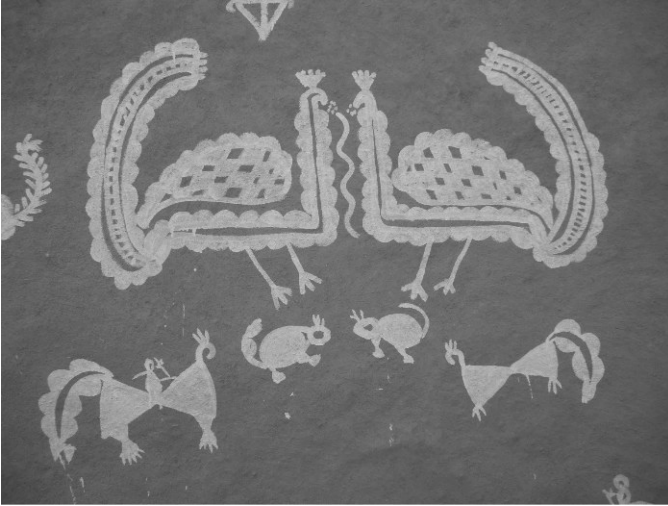
वक़्त की बारहखड़ी

(प्रेम सिहं चारण की एक पैंटिंग को देखते हुए)

कहीं नहीं जाती
आकाश से झाँकती
सामने दिखती पथवीथि
पाँवों के निशान जोहते हैं
उम्मीद की पगडंडी
पीछे दिखते वीरान खेत
नग्न वृक्ष दिखता है
जैसे बाँच रहे हों
समय की बारहखड़ी! ❑

जिज्ञासा और प्रश्न से शुरू होता है सीखना!

डॉ. शारदा जैन

शिक्षा और महिला विकास के प्रश्नों को दार्शनिक आधार से देख कर उनके उत्तर भारतीय बौद्धिक परंपरा में खोजने वाली डॉ. शारदा जैन का हाल ही में एक अत्यंत अनौपचारिक बातचीत रिकॉर्ड की गई। स्कूलस्कोप की निदेशक अमुक्ता महापात्रा ने शारदाजी के साथ यह चर्चा की। इसमें अत्यंत दिलचस्प वार्ता में शारदाजी ने अपने अनुभवों का साझा किया। वार्ता का संपादित अंश आलेख के रूप में यहां प्रस्तुत है। ❑ सं.

जहां तक मेरे काम का सवाल है तो मुझे लगता है 1984 का मंदारा लर्निंग एंड रिसोर्स सेंटर की परियोजना का मूल्यांकन का काम इस क्षेत्र में मेरा प्रवेश बिन्दु था। इसने वास्तव में मेरे अन्य बहुत से कार्यों को प्रभावित किया। मेरे लिए यह आंखें खोलने वाला काम साबित हुआ। मूल्यांकन का काम मैंने 1984 में हाथ में लिया था और मुझे नहीं समझ में आ रहा था कि उसे कैसे समेटू। मैं वास्तव में काफी घबरायी हुई थी। लेकिन जब मैं वापस लौटी और जो कुछ मैं लिख कर लाई थी और जो कुछ भी मेरे पास था मैं उसे तराशने का काम कर रही थी। अनिल बोर्दिया आए और उन्होंने मेरा लिखा एक-एक पेज पढ़ा। तब हम महिला विकास कार्यक्रम पर काम कर रहे थे जो राजस्थान में बिल्कुल अनोखा कार्यक्रम था।

मुझे लगता है कि मैंने जो भी काम किया है उनमें सबसे अनूठा काम महिला विकास कार्यक्रम ही था। बोर्दियाजी यह पता लगाने की कोशिश कर रहे थे कि मेरी मूल्यांकन रिपोर्ट किस तरह उन्हें महिला विकास कार्यक्रम को डिजाइन करने और उसके प्रबंधन में मदद कर सकती है। वे दो चीजों के बारे में बहुत जागरूक थे। एक तो इस तथ्य से कि आपको दूसरों की बात सुनने की ज़रूरत है। सरकार की ओर से आने वाले किसी कार्यक्रम के लिए वे इसे जरूरी समझते थे। वे जानते थे कि सरकार की

ओर से आने वाले किसी भी कार्यक्रम में यही होता है कि आप दूसरों को बताते हैं। वे इसका उलटा चाहते थे। और इस पर वे कोई समझौता करने को तैयार नहीं थे।

उन्होंने कहा मंदरा से सीख मिलती है कि यह महत्वपूर्ण नहीं है कि हम महिलाओं को सुनें और फिर सोचें कि क्या किया जा सकता है। क्या किया जा सकता है वह भी महिलाओं की तरफ से ही आना चाहिए। तो पूछा कि क्या हम ऐसा कार्यक्रम बना सकते हैं? क्या हम कोई ऐसा कार्यक्रम या दृष्टिकोण विकसित कर सकते हैं जिसमें लोग अपने लिए खुद ही योजना बना सकें।इसलिए हमें उन्हें अपनी योजना बनाने देने की योजना बनानी होगी। वह एक प्रकार से संपूर्ण क्रांति थी।

मुझे मंदरा के अनुभव से बहुत स्पष्ट हो रहा था कि वे, जो उस समय बहुत कमजोर थे,उन्हें अपनी सुरक्षा के लिए कुछ शक्ति संरचना की आवश्यकता थी। मंदरा में वे लगातार अपने सपनों के बारे में सोच रहे थे जबकि वास्तविकता कुछ ऐसी थी जिसे कई कारक नियंत्रित कर रहे थे।

महिला विकास कार्यक्रम में हमने उनसे जो सीखा वह यह था कि आपको तीन पैरों वाली एक तिपाई की आवश्यकता है। इन तीन पायों में एक था सपने देखने वाला, दूसरा था संरचना, जो सरकार से आनी थी और तीसरा था अनुसंधान का महत्वपूर्ण इनपुट। इन तीनों को साथ-साथ चलना चाहिए। इन तीनों का किसी भी नवाचार में एक साथ होना जरूरी होता है। संरचनाएं सरकार से आनी चाहिए, यही हमने सीखा है।

मुझे लगता है कि यह बहुत स्पष्ट था कि जिस संदर्भ में लोग बात करते हैं वह बहुत महत्वपूर्ण होता है क्योंकि अगर हम जहां खड़े हैं वहां अपनी जगह से उनकी बातों को समझने की कोशिश करेंगे तो हमें सब कुछ गलत मिलेगा। इसलिए हमें सबसे पहले उस तरह के संदर्भ में जाना होगा। एक बहुत ही दिलचस्प घटना याद आती है जो मेरी मंदरा के शिक्षकों के साथ घटी।मैं उनके साथ एक कार्यशाला में थी। मैंने उनसे एक सवाल पूछा। अब मुझे लगता है कि वह कितना बेवकूफी भरा सवाल था। मैंने कहा मान लीजिए कि आपके पास बहुत सारा पैसा है; मान लीजिए कि आपको कोई डर नहीं है; मान लीजिए कि आपको शक्ति दे दी गई है। तो आप स्कूलों में क्या करना चाहेंगे? एक या दो शिक्षक सावधान थे। उन्हें लगा कि मेरा प्रश्न मूर्खतापूर्ण है फिर भी उन्होंने जवाब दिया। लेकिन तीसरे शिक्षक मुझसे बहुत नाराज हो कर बोले मैं जवाब नहीं देना चाहता। मैंने पूछा कि इसमें ग़लत क्या है?उन्होंने कहा कि आप हमें उन चीजों पर सोचने को क्यों जोर दे रहीं हैं जो कभी हो नहीं सकती। यह आप गलत कर रही हैं।

वास्तव में उस शिक्षक ने मेरी मदद की। मुझे लगता है कि यह बहुत सही हुआ, क्योंकि इसी तरह मैंने सीखा कि हम कहते तो हैं कि हम आपकी बात सुन रहे हैं लेकिन हम लगातार आदेश दे रहे होते हैं। हम लगातार उन पर यह या वह डाल रहे हैं होते है। यही बहुत महत्वपूर्ण बात मैंने महिला विकास कार्यक्रम में सीखी। हमारे साथ अरुणा रॉय थी जो सपने देखने वाली थी। मैं शोध पक्ष से थी और अनिल बोर्दिया सरकार पक्ष से थे। इसलिए हमने ऐसी टीम बनाई जिसमें अपना काम ऐसा रखना था ताकि सरकार आकर इसे नियंत्रित न कर सके। मैं इस

राय की थी कि शोध को हर जगह प्रकाशित नहीं किया जाना चाहिए। तब लोग आएंगे और पूछेंगे कि क्या हो रहा है? इसलिए मैं बहुत लो प्रोफ़ाइल रख रही थी। ईपीडब्ल्यू में पेपर नहीं दे रही थी। सभी कहते थे कि तुम किस तरह के शोधकर्ता हो? वे मेरे काम से बहुत निराश थे। वे कहते कि तुम शोधकर्ता होकर भी शोध जगत के नियमों का अनुसरण नहीं करती हो। तुम एक एक्टिविस्ट नहीं हो फिर भी हमेशा एक्टिविस्टों के साथ रहती हो।

हम एक ऐसे रास्ते पर थे, जहां मैं न तो एक एक्टिविस्ट थी न ही वास्तविक शोधकर्ता का दावा कर सकती थी। यह वह समय था जब हम एक ऐसे रास्ते पर चल रहे थे जिसे आने वाले भविष्य के लिए आसान बनाया जाना बाकी था। पिछले वर्षों में बहुत कुछ हुआ है। लेकिन मुझे लगता है कि महिला विकास कार्यक्रम मेरे लिए आठ दशक से अधिक के जीवन काल में एक अग्रदूत था।

राजस्थान में दिवरला सती की घटना हुई जिस पर चले समूचे आंदोलन की बागडोर महिलाओं ने अपने हाथ में ली। मुझे याद है प्रधान मंत्री राजीव गांधी ने उसमें भाग लेने के लिए दिल्ली से तीन-चार मंत्री भेजे थे। आश्चर्यजनक बात हुई। वे मंत्री डायस पर जाना चाहते थे और मैंने उन्हें रोक दिया क्योंकि वहां नेतृत्व महिलाएं कर रही थीं और हम सभी आगे बैठे थे। इसलिए मंत्रियों को भी हमारे साथ ही बैठना पड़ा। तब पत्रकारों को लगा कि यह तो वास्तव में अजूबा हो गया। उन्होंने मंत्रियों से सवाल भी किया कि आपको ऐसा व्यवहार कैसा लग रहा है?

यह एक अद्भुत अनुभव था लेकिन मंदारा का अनुभव वास्तव में मेरे लिए एक प्रशिक्षण स्थल था। हमने जो समूह बनाया वह वास्तव में बहुत अच्छा काम कर रहा था। लेकिन उसके बाद जो कुछ हुआ वह दुखद था। मैं योजना बनाना चाहती थी और सिस्टम चाहती थी। हमने सीखा कि यदि आप बदलाव चाहते हैं तो इसके लिए एक समर्थक संरचना होनी चाहिए और उस समर्थक संरचना में ताकत होनी चाहिए। आप सरकार के बिना ऐसा नहीं कर सकते। आप सरकार को अपना दुश्मन न मानें। इसलिए सिस्टम बदलने में सक्षम होने के लिए सिस्टम के भीतर के लोगों को दोस्त बनाना होगा। हम सिस्टम नहीं बदल सकते, यह समझ हमें कठिन तरीके से हमारे साझेदारों से मिली। हमें बहुत दुःख हुआ जब बाद में कार्यक्रम को संभालने वाले साझेदारों ने जिनेवा में जाकर इसे प्रस्तुत किया और कहा कि यह सब उन्होंने किया है। लेकिन हम चुप रहे क्योंकि हम जानते थे कि जब तक वे भागीदार नहीं होंगे तब तक इस पूरी चीज़ को कोई सुरक्षा नहीं मिलेगी। तो आपके उस वातावरण में दोस्त होने चाहिए जो सिस्टम में हैं। यह बहुत जरूरी है।

एक बात का जरूर अफसोस है कि शुरू में मैंने अपने काम में भारतीय बौद्धिक परंपराओं को बहुत गंभीरता से नहीं लिया। शिक्षा के क्षेत्र में यह हमारी मूर्खता थी। मुझे लगता है कि हमें अपनी क्षमताओं की दोबारा व्याख्या करनी होगी। मैं प्रोफेसर दयाकृष्ण की आभारी हूं जिन्होंने मुझे क्लासिक पाठों के साथ-साथ गतिविधियों को भी दोबारा देखना सिखाया। उन्होंने ऑनर्स और पोस्ट ग्रेजुएशन के लिए ऐसे पाठ्यक्रम निर्धारित किये जिनमें छात्र व्याख्याएँ नहीं पढ़ते थे बल्कि वे मूल पढ़ते थे। मुझे ऑनर्स ग्रुप को भारतीय दर्शन पढ़ाने के लिए कहा गया। उन्होंने कहा कि आप वैसे ही पढ़ाएं जैसे आप सोचती हैं कि चीजें पढ़ाई जानी चाहिए। इसलिए संस्कृत के अपने आदिम ज्ञान के साथ मैंने 'सांख्यकारिका' के शास्त्रीय पाठ को देखा जो सबसे पुराने शास्त्रों में से एक था। मैं मूल पाठ पर ही भरोसा कर रही थी। यह सचमुच एक बड़ी शिक्षा थी।

मैं वह मिथक भी साझा करना चाहूंगी जो ब्रितानवी राज में हमें सिखाया गया कि भारत में 'गुरु' का मतलब अंतिम शब्द होता है और आप कभी सवाल नहीं उठा सकते।मैंने जब 'सांख्यकारिका' को देखा तो पाया कि सम्पूर्ण कारिका एक शिष्य के गुरु से प्रश्न करने से ही शुरू होती है।

उससे हमने पहचाना कि सीखना उस से शुरू होता है जो सीखना चाहता है। यह एक प्रमुख सिद्धांत था। संस्कृत में एक शब्द है जिज्ञासा। जब तक ज्ञान की इच्छा नहीं है तब तक ज्ञान के आस-पास भी नहीं हैं आप।

कारिका की शुरुआत होती है शिष्य के इस सवाल के साथ कि संसार में दुःख क्यों है? हम दुःखी क्यों होते हैं? यह बुद्ध का भी क्लासिकल सवाल था दुःख क्यों है? मगर शिष्य गुरु से कहता है आप मुझे दुःख की उत्पत्ति के बारे में मत बताइए। मुझे उत्तर दीजिए कि इसे दूर कैसे करें? उसका सवाल ठीक भी लगता है कि क्योंकि जब आप दर्द में होते हैं तब आपको इससे कोई मतलब नहीं होता कि वह ऐसे शुरू

हुआ, या वैसे शुरू हुआ। आप तो यह चाहते हैं पहले इस दर्द को हटाओ। गुरु ने बहुत तरह से विश्लेषण करके बताया कि तीन प्रकार के दुःख होते हैं। शिष्य ने कहा मुझे विश्लेषण नहीं चाहिए। मुझे इससे मुक्ति चाहिए। तो गुरु ने कहा इसका एक ही उत्तर है 'ज्ञान'। इस पर शिष्य और उत्तेजित हो गया। कहने लगा यदि मेरे पांव में कांटा धंसा है तो इसमें 'ज्ञान' क्या करेगा। मैं उसे निकालना चाहता हूं। यदि मैं भूखा हूं तो मुझे भोजन चाहिए। यदि घर में भोजन नहीं है तो पैसे चाहिए ताकि भोजन बाहर से खरीद सकूं। मुझे भोजन चाहिए 'ज्ञान' नहीं। तब गुरु असली सिद्धांत पर आता है। कहता है एकांतिक और आत्यन्तिक तुझे दुःख से मुक्ति नहीं देगा। यह कांटा निकाल दूंगा तो दूसरा कांटा लग जाएगा। अभी भोजन की व्यवस्था हो जाएगी तो बाद में उसकी जरूरत नहीं रह जाएगी ऐसा नहीं होगा। तो अंतिम विश्लेषण यह हुआ कि तुम्हें 'ज्ञान' होना चाहिए। किस बात का ज्ञान? आप जिस क्षेत्र में जाते हैं उसके संदर्भ का ज्ञान। फिर वहां से आप किसी और क्षेत्र में जा सकते हैं। फिर आप अपनी खुद की क्षमता तक जा सकते हैं। और उससे भी आगे जा सकते हैं।

तो जो संदेश आ रहा था वह यह था कि जब तक सीखने की इच्छा न हो तब तक कोई सीख नहीं हो सकती। और शिक्षक सीखने वाले की जिज्ञासा तथा क्षमता को ध्यान में रख कर आगे बढ़ता है जिससे सीखने वाले की जिज्ञासा और बढ़ती है।

ज्ञान पाने की जिज्ञासा की जाती है ज्ञान अपनी तरफ से दिया नहीं जाता। यह हमारे शास्त्रों में आता है।मुझे लगभग सभी भारतीय शास्त्रों में यही मिला।

भारतीय बौद्धिक परंपरा का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा जिसने मुझे बहुत प्रभावित किया है और जो मुझे लगता है कि हम सभी की मदद कर सकता है, वह यह है कि आप जो कह रहे हैं यदि मुझे गलत लगता है और मुझे उसका प्रतिवाद करना है तो मुझे सबसे पहले आप जो कह रहे हैं उसे वापस बताना होगा कि आप क्या कह रहे हैं। इसके लिए मुझे पहले आपके ढांचे में घुसना होगा, आपके ढांचे को स्पष्ट करते हुए आपसे अनुमोदन प्राप्त करना होगा कि आप कहें हां मैं यही कह रहा था। फिर मैं उसका प्रतिकार करूंगा। इसलिए जरूरी है पहले मैं आपके वक्तव्य को उसके संदर्भ, उनके दृष्टिकोण से देखूं और समझूं और फिर आपके मत के विपरीत अपनी बात रखूं। यह एक शास्त्रीय परंपरा है जिसका पालन हम सदियों से करते आ रहे हैं। पूर्वपक्ष की यह एक ऐसी परंपरा थी जिसमें लगातार संवाद होते रहते थे। लेकिन अब हम उनके साथ संवाद नहीं कर सकते जो हमारे ढांचे में नहीं है। हम केवल अपनी भाषा का उपयोग करते हैं। जब तक अगला हमारी भाषा नहीं बोलेगा हम उसकी बात नहीं समझेंगे। यह कह कर टाल देंगे कि जाने दो, वह नहीं समझेगा, बेवकूफ है।

तो जब कोई बच्चा कहता है कि यह किताब अच्छी नहीं है। मैं इसे नहीं पढ़ना चाहता। तो आप उसे नहीं कह सकते कि यह गलत बात है। आपको यह तय करना होगा कि आपको यह गलत क्यों लग रहा है!❑

मैं अपने भीतर किसी अनन्य दैवी शक्ति का कोई दावा नहीं करता। मैं पैगम्बरी का दावा नहीं करता। मैं तो एक विनम्र सत्यशोधक हूं और सत्य की ही प्राप्ति के लिए कृतसंकल्प हूं। ईश्वर के साक्षात्कार के लिए मैं कितने भी बड़े त्याग को अधिक नहीं मानता। मेरे समस्त कार्यकलाप, चाहे उन्हें सामाजिक कहा जाए या राजनीतिक, मानवीय अथवा नैतिक, उसी लक्ष्य की प्राप्ति की ओर अभिमुख हैं।
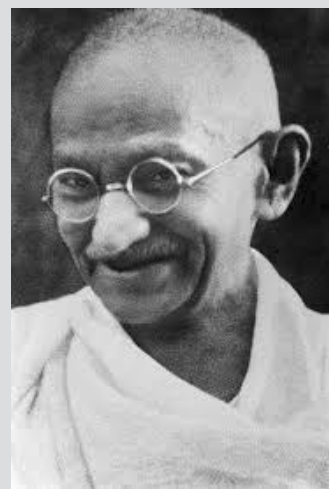
इसलिए मुझे दलित वर्गों की सेवा की लालसा रहती है। और चूंकि मैं राजनीति में प्रवेश किए बगैर यह सेवा नहीं कर सकता इसलिए मैं राजनीति में हूं। इस प्रकार मैं कोई स्वामी नहीं हूं। मैं तो भारत और उसके जरिए मानवता का एक संघर्षरत, भूल-चूक करने वाला और विनम्र सेवक हूं। ❑ **महात्मा गांधी (यंग इंडिया, 11.06.1924)**

लंदन की रेस्त्रा 'इंडिया क्लब'

आजादी के संघर्ष की यादों की गवाह इतिहास के पन्नों में

❑

ये वो ग़जब की जगह है जिसे अगर आप न ढूंढ़े तो आपको मिले भी नहीं। फिर भी लंदन में 'भारतीयों के लिए घर के स्वाद' के प्रतीक के रूप में बीते 70 सालों से मौजूद इस जगह को कई हिंदुस्तानी अपने चिर परिचित जायके और चेहरों की तलाश में ढूंढ़ते चले आते हैं।

'द इंडिया क्लब' दशकों से लंदन में दक्षिण एशियाई समुदायों के लिए सांस्कृतिक और ऐतिहासिक महत्व का एक प्रतिष्ठित लॉउन्ज-रेस्तरां और बार है, जो मध्य लंदन की व्यस्त सड़क पर होटल स्ट्रैंड कॉन्टिनेंटल के अंदर मौजूद है। इसे 1950 में लंदन आने वाले शुरुआती प्रवासी भारतीयों की मुलाक़ात और आपसी जुड़ाव की एक जगह के तौर पर स्थापित किया गया था।

लेकिन अब यह इंडिया क्लब बंद होने जा रहा है क्योंकि इसके मालिक एक आधुनिक होटल के निर्माण के लिए इस इमारत के एक हिस्से को ढहाना चाहते हैं। कई लोग इस ख़बर से दुखी हैं क्योंकि इस क्लब के बंद होने से यह शहर अपने इतिहास का एक हिस्सा खो देगा।

यह क्लब अपने बंद किए जाने के ख़िलाफ़ लंबी लड़ाई लड़ता रहा है। कुछ साल पहले इसके मालिकों, यादगर मार्कर और उनकी बेटी फ़िरोज़ा ने इस जगह को बचाने के अपने अभियान के तहत हज़ारों की संख्या में सिग्नेचर प्राप्त होने पर इसे ध्वस्त किए जाने के ख़िलाफ़ यह लड़ाई जीत भी ली थी। लेकिन 17 सिंतबर को यह क्लब आख़िरी बार लोगों के लिए खुला। फ़िरोज़ा मार्कर ने कहा कि, हम बंद ज़रूर हो रहे हैं लेकिन पास में ही एक नई इमारत भी देख रहे हैं ताकि इसे वहां ले जाएं।

यह ख़बर कई लोगों के लिए एक झटके के रूप में आई क्योंकि इस जगह का इतिहास में एक मुकाम है। होटल स्ट्रैंड कॉन्टिनेंटल की पहली मंज़िल पर स्थित द इंडिया क्लब की शुरुआत इंडिया लीग के सदस्यों ने की थी। ब्रिटेन स्थित इस संगठन ने 1900 के दशक में भारत की स्वतंत्रता के लिए अभियान चलाया था। कहा जाता है कि इसके संस्थापक सदस्यों में भारत के पहले प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू भी

❑

रचेरिलान मोल्लान

बीबीसी न्यूज

थे। 1990 के दशक में इस संपत्ति को मार्कर परिवार ने लीज़ पर हासिल किया था।

शुरू में इस क्लब को भारत की स्वतंत्रता के लिए लड़ने वालों ने मीटिंग के लिए इस्तेमाल किया, लेकिन बाद में यह दक्षिण एशियाई समुदाय के लोगों के लिए खाने की मेज़ पर और आयोजनों के दौरान अपने मित्रों से मुलाक़ात की जगह बन गई।

इतिहासकार कुसुम वड़गामा जो 1953 में ब्रिटेन पहुंचने के बाद से इस क्लब में लगातार जाती रहीं हैं, कहती हैं: 1950 और 1960 के दशक में यह ऐसी एकमात्र जगह थी जहां भारतीय अपने यहां का खाना खाने और अपने देश की भाषा बोलने वालों से मिल सकते थे।

उन्होंने कहा, द इंडिया क्लब ने इस नई जगह पर हम सभी के अकेलेपन को कम किया है। साथ ही वे यह भी बताती हैं कि तब लोग अक्सर यहां अपना जन्मदिन, शादी और यहां तक कि भारतीय त्योहारों, जैसे कि दिवाली, मनाने के लिए मिलते हैं। वड़गामा औपनिवेशिक शासन के दौरान पूर्वी अफ़्रीका में पली बढ़ी और पढ़ाई के लिए ब्रिटेन आ गई थीं।

वे कहती हैं, आज़ादी के बाद के वर्षों में भारत से भी कई लोग ब्रिटेन आ कर बस गए थे। तब लंदन में भारत से आए प्रवासियों के लिए शायद ही कोई सांस्कृतिक मेल मिलाप की जगह थी।

द इंडिया क्लब ने इस समुदाय के लिए उस खाई को पाट दिया। इसमें भारतीयों के स्वाद वाले व्यंजन परोसे जाते थे, जैसे दक्षिण भारत का मुख्य

क्लब के समृद्ध सामाजिक–राजनीतिक इतिहास की याद दिलाते हुए यहां की दीवारें जाने माने भारतीय और ब्रिटिश हस्तियों की तस्वीरों से सजी हैं जो बीते दशकों के दौरान यहां आए थे, जैसे कि ब्रिटिश–भारतीय सांसद दादा भाई नौरोजी और दार्शनिक बर्टरांड रसेल।

भोजन डोसा–सांभर, उत्तर भारत का पसंदीदा बटर चिकन, स्ट्रीट फूड जैसे कि पकौड़ा और मसाला चाय और कॉफ़ी।

इस क्लब के अंदर के हिस्से को भी आज़ादी के पहले की कॉफ़ी शॉप की तरह डिजाइन किया गया था, जहां लोग मिलते थे और चाय की चुस्की और सिगरेट के कश के साथ अपनी संस्कृति और राजनीति पर बातें करते थे। वहीं क्लब में लगे झूमर, फॉर्मिका टेबल और सीधी पीठ वाली कुर्सियां 70 साल बाद आज भी बहुत हद तक पहले जैसी ही हैं।

क्लब के समृद्ध सामाजिक–राजनीतिक इतिहास की याद दिलाते हुए यहां की दीवारें जाने माने भारतीय और ब्रिटिश हस्तियों की तस्वीरों से सजी हैं जो बीते दशकों के दौरान यहां आए थे, जैसे कि ब्रिटिश–भारतीय सांसद दादा भाई नौरोजी और दार्शनिक बर्टरांड रसेल।

बीते दशकों के दौरान यह क्लब न केवल प्रवासियों के लिए बल्कि जीवन के हर क्षेत्र के लोगों, जैसे पत्रकारों और कई भारतीय–ब्रिटिश समूहों और संस्थानों के लिए एक 'वाटरिंग होल' (वह स्थान जहाँ लोग सामाजिक रूप से एकत्र होते हों) सा बन गया।

पत्रकार और लेखक शरबनी बसु याद करती हैं कि 1980 के दशक में वो इस क्लब में अपने साथी पत्रकारों के साथ अक्सर जाया करती थीं। वे कहती हैं, ये सेंट्रल लंदन की उन कुछ जगहों में से थी, जहां किफायती भारतीय खाना मिला करता था।साथ ही वे यह भी कहती हैं कि इंडिया क्लब शहर के उस छुपे रहस्य की तरह से है, जहां वो भारत से आने वाले अपने दोस्तों और परिवार वालों को ले जाना पसंद करती हैं।

मोटिवेशनल स्पीकर स्मिता थरूर कहती हैं कि क्लब के संस्थापक सदस्य रहे उनके पिता चंदन थरूर बताते थे कि शादी से पहले तक वो यहां अक्सर आया करते थे, वो इस जगह को लेकर कई मज़ेदार कहानियां सुनाते थे। इनमें से एक कहानी है कि एक बार–लेडी ने वहां लोगों को यह सोचते हुए ड्रिंक परोसने से इनकार कर दिया कि वो नशे में होंगे।

कई वर्षों बाद जब वो लंदन में उनसे (बेटी से) मिलने आए तो अपनी बेटी को क्लब ले गए। तब से थरूर वहां लगातार जाती रही हैं। वे कहती हैं, पिता के निधन के बाद उनके सम्मान में मैंने इंडिया क्लब में एक कार्यक्रम आयोजित किया। मैंने अपने पति का 50वां जन्मदिन भी वहीं मनाया। इंडिया क्लब के लिए हमारे दिल में ख़ास जगह है। उसे बंद होते देखना दुखद है। अब उसकी केवल यादें रह जाएंगी।❑

कदम्ब

❑

देवेन्द्र भारद्वाज

राजस्थान प्रौढ़ समिति के औषध उद्यान में हाल ही में कदम्ब का पौधा रोपा गया है। इस उद्यान में लगे वृक्षों की जानकारी की शृंखला में इस बार इसी पर चर्चा।❑ सं.

कदम्ब का स्मरण होते ही भगवान श्री कृष्ण व ब्रजक्षेत्र आपको अवश्य याद आता होगा,और क्यों ना आऐं कदम्ब का उल्लेख ब्रजभाषा के अनेक कवियों ने कृष्ण की लीलाओं से संबंधित होने के कारण किया है। रसखान ने तो यहां तक कह दिया कि जौ खग हौं तौ बसेरो करौं मिलि कालिंदी-कूल कदंब की डारन।

लोक मान्यता है कि मथुरा के गोकुल में छह हजार साल पुराना कदम्ब का पेड़ अब भी मौजूद है। यह पेड़ आज भी श्रद्धालुओं के लिए खास महत्त्व रखता है। दीपावली के बाद पड़ने वाले गोवर्धन और भैया दूज के दिन हजारों की संख्या में लोग यहां पर मनोकामना पूरी करने आते हैं।

वनस्पति विज्ञान में कदम्ब का वानस्पतिक नाम है- रूबियेसी कदम्बा। उसका पुराना नाम था नॉक्लिया कदम्बा। इसे रूबियेसी परिवार से संबंधित माना जाता है। यह मुख्य रूप से अंडमान, बंगाल, आसाम तथा दक्षिण भारत में पाया जाता है। वास्तव में यह ब्रजभूमि का स्थानिक वृक्ष नहीं है। ब्रजभूमि का स्थानिक वृक्ष तो मित्राग्यना पारविफोलिया (कळम) है जिसकी हम यहां चर्चा करेंगे।

रूबियेसी कदम्बा, नॉक्लिया कदम्बा या एन्थोसेफेलस कदम्बा (कदंब वृक्ष) भारतीय उपमहाद्वीप में आम है। सम्भवतः कदंब नाम, कदंब राजवंश जिसने 450 ईस्वी के तालगुंडा शिलालेख के अनुसार, 345 ईस्वी से 525 ईस्वी तक बनवासी, जो अब कर्नाटक राज्य है, पर शासन किया था, लेकिन मथुरा क्षेत्र में यह आम नहीं है। एंथोसेफालस कदंब के पेड़ वृन्दावन में नहीं पाए जाते हैं, किन्तु मित्राग्यना परविफोलिया (कळम वृक्ष) आमतौर पर मथुरा और भरतपुर जिले के आसपास पर्णपाती जंगलों में पाए जाते हैं, विशेषतौर पर नदी-नालों के किनारे पाया जाता है। इसलिए असली कृष्ण कदंब का पेड़ मित्राग्यना पारविफ्लोया (केम या कळम) ही माना जाता है जो वृन्दावन में बहुतायत में पाया जाता है। मित्राग्यना पारविफोलिया (कळम) और एंथोसेफेलस कैडम्बा के बीच भ्रम इसलिए बना हुआ है क्योंकि दोनों में गोल चौड़ी पत्तियां और गोल सुंदर फूल होते हैं। मगर सूक्ष्म अवलोकन से दोनों में अन्तर स्पष्ट हो जाता है। सबसे बड़ा अन्तर दोनों के पुराने वृक्षों को देख कर नज़र आ जाता है। पूरी तरह से परिपक्व कदम्ब वृक्ष 45 मीटर की ऊंचाई तक पहुंच सकता है। यह गोलाकार मुकुट (क्षत्र) और सीधे बेलनाकार तने वाला तेजी से बढ़ने व चौड़ी फैलने वाली शाखाओं वाला होता है। पहले 6-8 वर्षों में तेजी से बढ़ता है। पुराने पेड़ों के तने की छाल गहरे रंग की, ऊर्ध्वाधर दरारों वाली गहरे भूरे रंग वाली खुरदरी होती है। दूसरी तरफ केम या कळम (मित्राग्यना पारविफोलिया) 15 फीट तक फैली शाखा के साथ 50 फीट की ऊंचाई तक पहुंचता है। तना अधिक उंचाई तक सीधा नहीं होकर शाखायुक्त होता है। परिपक्व होने पर तने व शाखाओं की छाल भूरे रंग की, चिकनी और पतली अनियमित पपड़ीदार होती है। युवा शाखाएं कोणीय होती हैं।

रूबियेसी कदम्बा, नॉक्लिया

कदम्बा या एन्थोसेफेलस कदम्बा या कदंब को आमतौर पर संस्कृत में निप और हिंदी में ''कदंब'' और बंगाली में ''कोडोम'' के नाम से जाना जाता है। यह एक सदाबहार उष्णकटिबंधीय वृक्ष है जो भारत, बांग्लादेश, नेपाल, म्यांमार, श्रीलंका, कंबोडिया, लाओस, फिलीपींस, मलेशिया, इंडोनेशिया, पापुआ न्यू गिनी और ऑस्ट्रेलिया के विभिन्न हिस्सों में पाया जाता है। पौधे के अन्य नाम हैं नियोलामार्किया कैडम्बा, नौक्लिया कैडम्बा (रॉक्सब.), एन्थोसेफालस कैडम्बा (रॉक्सब.) मिक., समामा कैडम्बा (रॉक्सब.) कुंत्जे, एंथोसेफालस मोरिंडीफोलियस कोर्थ., नौक्लिया मेगाफिला एस. मूर, नियोक्लिया मेगाफिला (एस. मूर) एस. मूर, आदि हैं। यह एक सजावटी पौधा है जिसका उपयोग लकड़ी और कागज बनाने के लिए भी किया जाता है। भारतीय पौराणिक कथाओं और धर्म में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। आस्थावान लोगों का दृढ़ विश्वास है कि कदम्ब के पेड़ में भगवान निवास करते हैं। संस्कृत के एक श्लोक में कहा गया है, ''अयि जगदम्बा मद-अम्बा कदंब वन-प्रियवासिनी हासा-रते'' यानी, देवी दुर्गा को कदंब के पेड़ों के जंगल में रहना पसंद है।

कदम्ब को कई बीमारियों का इलाज करने के लिए जाना जाता है। विशेष रूप से, छाल और पत्तियों से तैयार अर्क महत्वपूर्ण है। दुनिया भर के विभिन्न शोधकर्ताओं ने अपने अध्ययन को कदंब से औषधीय महत्व के साथ कई फाइटोकेमिकल्स के साथ-साथ माध्यमिक मेटाबोलाइट्स की खोज पर केंद्रित किया है।

पौधों और जड़ी-बूटियों को नक्षत्रों की सूक्ष्म स्थिति के हानिकारक प्रभावों को बेअसर करने में बेहद प्रभावी माना गया है। कदम्ब भी इन पेड़ों में से एक है, जो शतभिषा नक्षत्र से संबंधित है। ज्योतिष के अनुसार जिन प्राणियों का जन्म नक्षत्र शतभिषा है, उन्हें अपने निवास स्थान के पास कदम्ब का पौधा लगाना चाहिए, जिससे मानसिक अवसाद, दिल का दौरा, मनोदशा में बदलाव, आलस्य, अशिष्टता आदि को रोकने में मदद मिलती है।

कदम्ब के जड़ की छाल के मेथनॉलिक अर्क का उपयोग सर्पदंश के खिलाफ मारक के रूप में किया जाता है। इसका उपयोग कोबरा के जहर को बेअसर करने में किया जाता है, जो रक्तस्राव, कार्डियोटॉक्सिसिटी, न्यूरोटॉक्सिसिटी, डिफाइब्रिनोजेनेशन और सूजन में प्रभावी हो सकता है। यह औषधीय पौधा है। एंटीऑक्सीडेंट गुणों के लिए भी जाना जाता है जो विशेष रूप से इसकी पत्तियों में पाए जाते हैं। हाल ही में पाया गया कि कदम्ब पत्ती के अर्क में कम सांद्रता पर भी, मच्छरों के लार्वा को मारने की क्षमता होती है। घाव को जल्दी भरने के लिए पत्तियों का लेप बनाकर इसे प्रभावित क्षेत्र पर लगाने का इलाज भी प्राचीन काल से चला आ रहा है।

कदम्ब के पेड़ (मित्राग्यना पारविफोलिया) की पत्तियों के अर्क से तैयार मधुमेह के इलाज के लिए एक औषधीय मिश्रण को भारत के पेटेंट महानियंत्रक द्वारा पेटेंट प्रदान किया गया है। पेड़ में पाए जाने वाले दो प्रकार के अल्कलॉइड, कैडम्बाइन और डायहाइड्रोकोनकोनिन युक्त संरचना को विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) से एक अंतरराष्ट्रीय वर्गीकरण संख्या भी प्राप्त हुई है। दवा के आविष्कारक, जयपुर के सुरेश शर्मा को दवा विकसित करने में 20 साल से अधिक का समय लगा। इसे टाइप-2 मधुमेह से पीड़ित 1,300 रोगियों पर सफलतापूर्वक आजमाया गया है। जयपुर स्थित वैज्ञानिक सुरेश शर्मा द्वारा मधुमेह रोगियों के इलाज के लिए बनाई गई दवा का काम 2009 में उनकी मृत्यु के बाद वित्त की कमी के कारण रुक गया। उनके बेटे आलेख शर्मा के अनुसार 15 वर्षों की कड़ी मेहनत के बाद, उन्हें 1 सितंबर, 2006 को विश्व व्यापार संगठन, जिनेवा से पेटेंट संख्या 197279 के साथ पेटेंट प्राप्त हुआ था। 2006 में, भारत सरकार के पेटेंट कार्यालय ने शर्मा को कदंब पेड़ के पत्तों से तैयार की गई दवा के लिए पेटेंट प्रमाणपत्र प्रदान किया। उन्होंने दावा किया, ''कदम्ब (एंथोसेफेलस चाइनीज) की पत्तियों में कैडम्बाइन और डायहाइड्रोसिनोनिन नामक एल्कलॉइड होते हैं। एल्कलॉइड इंसुलिन रिसेप्टर्स से असंवेदनशीलता को दूर करते हैं और इंसुलिन के उत्पादन को नियंत्रित करते हैं। इसलिए, यह मधुमेह को ठीक करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।'

भगवान कृष्ण की कथा से जुड़ा यह पेड़ केम या कळम (मित्राग्यना पारविफोलिया) जो राजस्थान के भरतपुर जिले और उत्तर प्रदेश के निकटवर्ती मथुरा और आगरा जिलों में बड़ी संख्या में पाया जाता है यही हमारा कदम्ब है। ❑

क्या अब पाठक कम होने लगे हैं?

❑

❑

बी.आर.प्रसाद

पठन की परंपरा पर विमर्श करता यह आलेख कुछ गंभीर सवाल उठाता है कि क्या आधुनिक तकनीक वास्तव में पाठक की समझ बढा रही है? ❑सं.

आजकल कुछ ऐसामहसूस होता है कि पढ़ना उतना जरूरी नहीं रहा जितना पहले हुआ करता था। तो क्या अब गंभीर पाठक नहीं रहे? पाठक से हमारा आशय उन लोगों से है जो लिखित शब्द से दुनिया के बारे में जानकारी हासिल करते हैं और अपनी समझ बढ़ाते हैं। पढ़ना बहुतों के लिए लत की माफिक होता है। कुछ के लिए पढ़ना शौक या हॉबी भी हो सकता है। लेकिन सारे ही साक्षर लोग पाठक हों यह भी जरूरी नहीं है।

रेडियो और टेलीविजन ने आ कर पठन को चुनौती दी। नई टेक्नोलॉजी ने कहा जो पढ़ कर जाना जा सकता है वह सुन और देख कर भी जाना जा सकता है। छापे को उनसे खतरा हुआ। लेकिन सबने देखा कि दृश्य श्रव्य माध्यमों के उभरने और लोकप्रिय होने से छापा या कहें प्रिन्ट माध्यम समाप्त नहीं हो गया। अब डिजिटल फिर पठन को चुनौती देता लगता है। हालांकि दृश्य श्रव्य माध्यमों के पहले भी कुछ मात्रा में जानकारी और समझ मौखिक शब्दों और अवलोकन से भी हासिल की जाती थी।लेकिन बुद्धिमान और जिज्ञासु लोगों के लिए इतना काफी नहीं था। वे जानते थे कि उन्हें अपना ज्ञान और अपनी समझ बढ़ाने के लिए पढ़नाजरूरी है, और उन्होंने पढ़ा। पाठक तभी कुछ नया सीख पाता है जब वह अपने से बेहतर को पढ़ता है।

जानकारी में वृद्धि करने वाले तथ्य और समझ में वृद्धि करने वाली अंतर्दृष्टि में अंतर करना हमेशा आसान नहीं होता है।यह स्वीकार करने में कोई हिचक नहीं होनी चाहिए कि कभी-कभी केवल तथ्यों के वर्णन से ही बेहतर समझ पैदा हो सकती है।

मनोवैज्ञानिक मानते हैं कि मनोरंजन के लिए पढ़ना पाठक पर सबसे कम बोझ डालता है, और इसके लिए कम से कम प्रयास की आवश्यकता होती है। जिसे थोड़ा बहुत भी पढ़ना आता है वह चाहे तो मनोरंजन के लिए तो पढ़ ही लेता है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि जो चीज मनोरंजन के लिए पढ़ी जाने वाली हो वह समझ बढ़ाने के लिए भी पढ़ी जा सकती है। इसका अर्थ यह नहीं लगा लेना चाहिए कि मनोरंजन की किताबें समझदार पाठकों द्वारा नहीं पढ़ी जानी चाहिए।

अधिक जानकारी पाना भी सीखना होता है क्योंकि जानकारी पाने से ही यह समझ में आता है कि हम

पहले क्या नहीं समझ पाए थे। लेकिन इन दोनों प्रकार के सीखने के बीच एक महत्वपूर्ण अंतर होता है।

इस पर गंभीरता से सवाल उठाया जा सकता है कि क्या आधुनिक संचार माध्यमों के आगमन ने उस दुनिया के बारे में हमारी समझ को बहुत बढ़ा दिया है जिसमें हम रहते हैं? अब शायद हम दुनिया के बारे में जितना पहले जानते थे, उससे कहीं अधिक जानते हैं। समझ के लिए पूर्व शर्त ज्ञानहोने की होती है। इसलिए कह सकते हैं यह सब अच्छे के लिए ही है।लेकिन विद्वानों ने यह भी कहा है कि समझ बढ़ाने के लिए ज्ञान की उतनी आवश्यकता नहीं होती जितनी आमतौर पर मानी जाती है। हमें किसी चीज़ को समझने के लिए उसके बारे में सब कुछ जानने की ज़रूरत नहीं है। वास्तव में बहुत सारे तथ्य अक्सर समझने में उतनी ही बाधा बनते हैं जितने कि बहुत कम तथ्य। हम आधुनिक लोग तथ्यों के सागर में एक तरह सेइतना डूब जाते हैं कि उससे समझ का नुकसान ही होता है।

इस परिस्थिति का एक कारण तो यह है कि आधुनिक मीडिया इस तरह से डिज़ाइन किए जाते हैं कि हमें सोचना अनावश्यक लगने लगे। मीडिया में बौद्धिक पक्षों और विचारों की पैकेजिंग अब हमारे समय के सबसे बेहतरीन दिमागों के उद्यमप्रस्तुत करते हैं। उपभोक्ता को जटिल मुद्दे सरल बयानों तथा सावधानीपूर्वक चयनित डेटा और आंकड़ों के साथ इस प्रकार परोसे जाते हैं कि उनके लिए अपना मन बनाना आसान हो जाए। उन्हें बिना किसी कठिनाई व प्रयास के सब कुछ मिल जाए और उन्हें अपने दिमाग पर कोई जोर नहीं देना पड़े इससे बड़ा आराम और क्या हो सकता है। लेकिन पैकेजिंग अक्सर इतने प्रभावी ढंग से होती है कि उपभोक्ता अपना कोई मन बनाही नहीं पाता हैं।इसकी बजाय, वह अपने दिमाग में पैकेज की हुई राय सहज ही शामिल कर लेता है। यह कंप्यूटर से पैन ड्राइव जोड़ने जैसा है। बिना सोचे समझे किसी राय को मान लेने का प्रदर्शन सोशल मीडिया पर हम रोज ही देखते हैं।❑

खास–खबर

युवा महिला वैज्ञानिक को अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार

अंतर्राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान की शीर्ष वैज्ञानिक डॉ. स्वाति नायक को फील्ड अनुसंधान और अनुप्रयोग के लिए प्रतिष्ठित नॉर्मन ई बोरलॉग पुरस्कार 2023के लिए चुना गया है। वे नई दिल्ली में आईआरआरआई में बीज प्रणाली और उत्पाद प्रबंधन की दक्षिण एशिया प्रमुख हैं।

यह पुरस्कार नोबेल पुरस्कार विजेता और भारत में हरित क्रांति के जनक डॉ नॉर्मन बोरलॉग की स्मृति में 40 वर्ष से कम आयु के असाधारण वैज्ञानिकों और खाद्य और पोषण सुरक्षा, भूख उन्मूलन के क्षेत्र में काम करने वाले व्यक्ति को दिया जाता है।
दिल्ली में रहने वाली, ओडिशा की वैज्ञानिक नायक को आयोवा में पुरस्कार दिया जाएगा। ❑

अनौपचारिका मंगवाने के लिए जरूरी जानकारी

ऑनलाईन सहयोग राशि के लिए बैंक का विवरण

BANK OF BARODA

Rajasthan Adult Education Association

Branch Name : IDS Ext.Jhalana Jaipur

I.F.S.C.Code : BARB0EXTNEH

(fifth Character is zero)

Micr Code : 302012030

A/c No. 98150100002077

सद्भावना सहयोग :

व्यक्तिगत 500/– रुपये वार्षिक

संस्थागत 1000/– रुपये वार्षिक

मैत्री समुदाय 5000/– रुपये

भारत की रूढ़िवादी छवि तोड़ने वाली लेखिका गीता मेहता

गीता मेहता को एक ऐसी लेखक, डॉक्यूमेंट्री फिल्म निर्माता के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त थी जिसने पश्चिमी देशों के पाठकों को एक ऐसे भारत से परिचित कराया जो उसके पुरानी रूढ़िवादी छवि से बहुत अलग था। इस लेखिका की दो दशकों में प्रकाशित केवल कुछ पुस्तकों ने ऐसा कर दिखाया।

मेहता, जिनका 80 वर्ष की आयु में 16 सितंबर को निधन हो गया, का जीवन साहस के साथ ग्लैमर का मिश्रण था। वह शिफॉन की साड़ियां पहने मैनहट्टन की पार्टियों में शिद्दत से शिरकत करती थी तो उसी सहजता से 1971 के बांग्लादेश युद्ध की रिपोर्टिंग, सूखाग्रस्त गांवों का दौरा करते व दिल्ली में कूड़े के पहाड़ जीतने ऊंचे ढेर पर भी मिलती थीं।

उनके पिता, बीजू पटनायक, विख्यात स्वतंत्रता सेनानियों में से एक और ओडिशा राज्य में एक दुर्जेय राजनेता थे। उनकी मां, ज्ञान, क्रांतिकारियों को अपने घर में पनाह देती थीं, जो एब्सकॉन्डर्स पैराडाइज़ के नाम से जाना जाता था।उनके भाई नवीन पटनायक ओडिशाके मुख्यमंत्री हैं।

मेहता ने कैंब्रिज के गिर्टन कॉलेज जाने से पहले शिमला और बॉम्बे में पढ़ाई की। बाद में उन्होंने लंदन फिल्म स्कूल में दाखिला लिया। उनका विवाह प्रकाशक सन्नी मेहता से हुआ था,जिनकी 2019 में मृत्यु हो गई। सन्नी मेहता सेउनकी मुलाकात कैम्ब्रिज मेंतब हुई थी जब वे इंगमार बर्गमैन की फिल्म 'द सेवेंथ सील' देखने के लिए कतार में खड़े थे। कुछ साल बाद, 1965 में दोनों ने शादी कर ली। दोनों के बेटे हैं आदित्य सिंह मेहता।

दिवंगत ब्रिटिश संपादक और लेखक इयान जैक ने अपनी पुस्तक, 'मुफ़स्सिल जंक्शन' में जिक्र किया: मेहता परिवार ऐसी पार्टियां करता था जिनमें जयपुर की राजमाता या इमरान खान या फैशन डिजाइनर ब्रूस ओल्डफील्ड से मिलना संभव था ... साथ ही वहां सलमान रुश्दी, ब्रूस चैटविन, जर्मेन ग्रीयर, माइकल हेर, रिस्ज़र्ड कपुशिंस्की, क्लाइव जेम्सजैसे लेखकों की एक बड़ी जमात भी होती थी। गीता का लेखिका बनने का कोई इरादा नहीं था लेकिन एक कॉकटेल पार्टी में, एक अतिथि ने उसकी साड़ी पकड़ ली, उसे अपने समूह में खींच लिया और कहा, अब यह लड़की हमें बताएगी कि 'कर्म' क्या होता है। उसने तीखे स्वर में उत्तर दिया: कर्म वह नहीं है जैसा उसे समझा जाता है। वहां बैंटम बुक्स के प्रमुख, मार्क जाफ़, मौजूद थे, और उन्होंने तुरंत ही गीता को उस किताब को लिखने के लिए अनुबंधित कर लिया जो 1980 के दशक की सबसे प्रसिद्ध पुस्तकों में से एक बनने वाली थी। वर्ष 1979 में प्रकाशित हुई यह पुस्तक 'कर्मा कोला' गुरुओं और हिप्पियों के बारे में थी

अगले दशकों में उन्होंने बहुत कम लिखा। 'राज' (1989) रियासतकालीन भारत के बारे में एक गपशपनुमा किताब थी जो खूब बिकी। इसमें ब्रिटिश शासन और एक पतनशील महाराजा की समान रूप से ऐसी-ऐसी की गई थी। 'ए रिवर सूत्र' (1993) उनकी लघुकथाओं का संकलन है जो मधुर भी है और चिंतनशील भी।

'स्नेक एंड लैडर्स' आधुनिक भारत पर तीखे निबंधों का एक संग्रह है, जिसमें मेहता ने 1970 के दशक के मध्य में लगाए गए आपातकाल पर निशाना साधते हुए प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी को काफी बिगड़े दिमाग का खिताब दे दिया। ❑

वेद व्यास को राजस्थान साहित्य अकादमी का 'साहित्य मनीषी' सम्मान

प्रगतिशील लेखक, विचारक, चिंतक और राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर तथा राजस्थानी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अकादमी, बीकानेर के अध्यक्ष पदों पर रहे वेद व्यास को साहित्य अकादमी का वर्ष 2023-24 का सर्वोच्च सम्मान 'साहित्य मनीषी' प्रदान किया गया है।

पिछले 50 वर्षों में अकादमी का यह सम्मान चुनींदा 17 मनीषियों को मिला है, जो इसके महत्व को इंगित करता है। वेदव्यास ने प्रगतिशील साहित्यिक आंदोलनों तथा प्रसारकर्मियों के जुझारू संगठनकर्ता के रूप में अपने को स्थापित किया और राज व्यवस्था के खिलाफलंबी लड़ाइयां लड़ी।

जीवन के 80 बसंत पार कर चुका यह मनीषी, जो जन जीवन के ज्वलंत मुद्दों पर अपने वैचारिक ओज के साथ बेबाक टिप्पणी करने के लिए जाना जाता है, आज भी अपनी वैचारिक प्रतिबद्धता के साथ सक्रिय है।

RS-CIT एक विस्तृत बेसिक कंप्यूटर कोर्स है जिसकी मदद से कंप्यूटर के आवश्य कौशल सीख कर कंप्यूटर पर कार्य करने में दक्षता हासिल की जा सकती है एवं विभिन्न डिजिटल सुविधाओं के उपयोग के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकती है

RS-CIT कंप्यूटर कोर्स ही क्यों ?

ई-लर्निंग पर आधारित, ऑडियो-विडियो कंटेंट तथा चरणबद्ध असेसमेंट
राज्य सरकार की विभिन्न सरकारी नौकरियों में एक पात्रता ।
शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग 6500 ज्ञान केंद्र ।
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय कोटा द्वारा परीक्षा एवं प्रमाण पत्र ।

अन्य कोर्सेज

- Financial Accounting
- Spoken English & Personality Development
- Desktop Publishing
- Digital Marketing
- Advanced Excel
- Cyber Security
- Business Correspondence

Rajasthan Knowledge Corporation Limited
IT shapes future
(A Public Limited Company Promoted by Govt. of Rajasthan)

नजदीकी ज्ञान केंद्र के लिए www.rkcl.in पर विजिट करें या 9571237334 पर WhatsApp करें

स्वत्त्वाधिकारी राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति द्वारा क्लासीफाइड प्रिण्टर्स, जयपुर में मुद्रित तथा 7-ए, झालाना संस्थान क्षेत्र, जयपुर-302004 से प्रकाशित। संपादक- राजेन्द्र बोड़ा

RNI 43602/77 ISSN No.2581-981X

सहयोग राशि के लिए बैंक विवरण

BANK OF BARODA
Rajasthan Adult Education Association
Branch Name : IDS Ext. Jhalana Jaipur
I.F.S.C. Code : BARB0EXTNEH (Fifth Character is zero)
Micr Code : 302012030
Acct.No. : 98150100002077
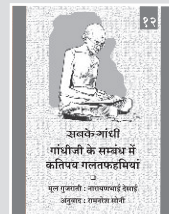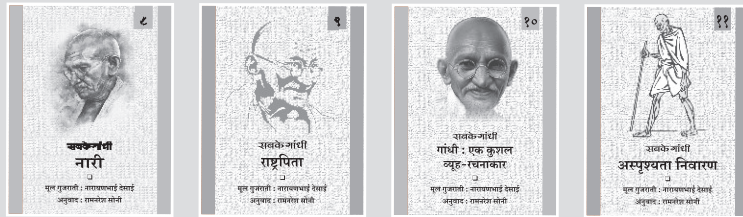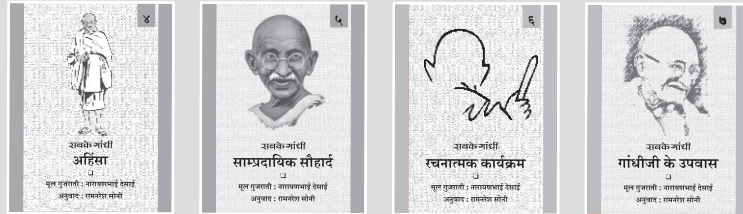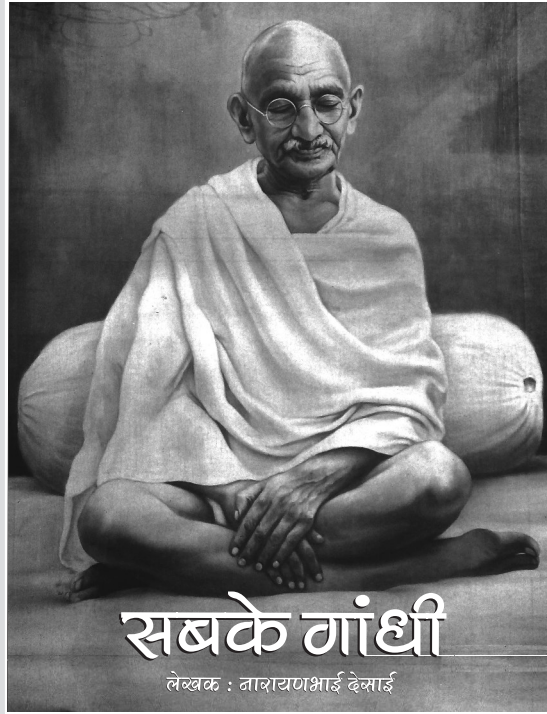
राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7–ए, झालाना संस्थान क्षेत्र,
जयपुर–302004

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7–ए, झालाना संस्थान क्षेत्र,
जयपुर–302004

12 पुस्तकों के एक सैट की सहयोग राशि रुपये 500/– मात्र डाक खर्च अलग से देय होगा।